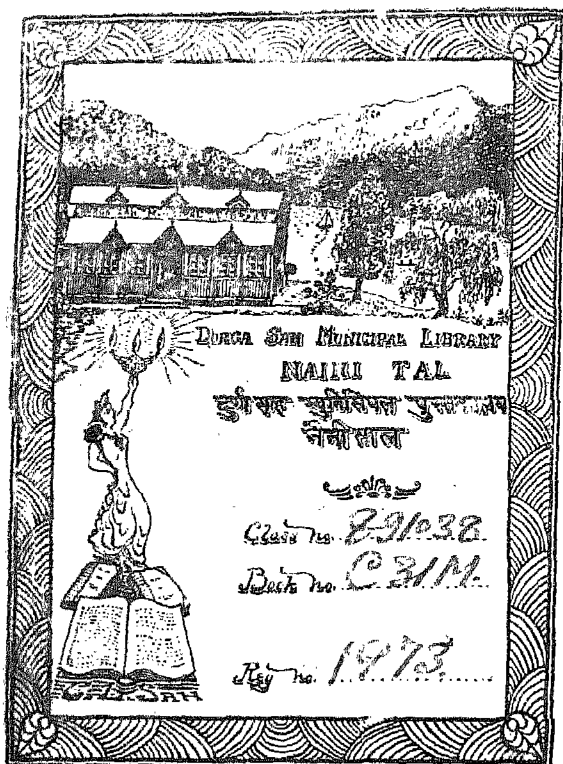

DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
नैनीताल
Class No.
Book No.
Reg No.

ધનરૂપાજી

ધનરૂપાજી નાથુભાઈ

ધનરૂપાજી નાથુભાઈ

मरी-खाल की हाय

लेखक:—

आचार्य चतुरसेन

(मरी खाल की हाय सौं, सार भसम हो जाय)

चतुर्थ संस्करण

प्रकाशक:—

गौतम बुक डिपो,

नई सड़क देहली।

मूल्य २) रु०

प्रकाशक:—
गौतम बुक डिपो
नई सड़क, देहली

चतुर्थ संस्करण

मुद्रक:—
जनरल प्रिंटिंग कम्पनी
पटोदी हाउस दरिया गंज
देहली।

1973

सूची

(तीसरे संस्करण पर-)

एक-बात

सुना है मरी खाल की हाय से लोहा भी भस्म हो जाता है, हमारी मर्दानगी भी लोहा खागई है यदि यह साहित्यक मरी खाल की हाय उसे भस्म कर सके, हमारी सामूहिक मर्दानगी को जगा सके तो हमारे अहो भाग्य !!

आज भारत के कठिन दिन हैं, और यह उद्‌गार उसकी सामूहिक कठिनाइयों की सांस हैं, इन्हें पढ़ कर मेरे देश के युवकों की पलकें यदि आर्द्र हो सकें, उनका हृदय पसीज सके-तो मेरा इन पंक्तियों को लिखना सफल हो जाय।

श्री चतुरसेन

चौथी बार

आज हम स्वाधीन भारत के आशामय दिनों में अपनी तपस्या के दिनों की गर्म सांसों को याद कर रहे हैं। इस छोटी सी पुस्तक में जो उद्‌गार समय २ पर आत्मा की वेदना से छट पटाते हुए निकले थे उनका न जाने उस काल में सामयिक पत्रों में कितनी बार कहाँ २ उल्लेख हुआ था। स्वदेश-खूनी दिवाली, चित्तौर के किले मे, भाभी, जवाहर--आशा के तार खास तौर पर अपने २ समय पर हज़ार हज़ार पत्रों में छप कर लाखों आँखों से आंसुओं की धार बहा चुके हैं। आज हम गर्व से गर्दन ऊँची करके हँसते हुए अपनी परिचित पीड़ाओं के इन उद्‌गारों को पढ़ने का पाठकों को अवसर देते हैं।

ज्ञान धाम
दिल्ली शहादरा
ता० २६ ६ ४ ६

चतुरसेन

स्वदेश ! *

(१०)

ऐ ! मेरे स्वदेश । तुम कौन हो ? मैं तुम्हें जानता तो हूँ, पर पहिचानता नहीं हूँ । जब मैं छोटा था तब तुमने मुझे पाला । जब मेरे जननी जनक छोटे थे तब उन्हें भी तुमने पाला । उनके भी पिता-हमारे दादा—जब छोटे थे तब उन्हें भी तुमने पाला था । उनके भी पिता—प्रपिता, उनके भी पिता—प्रपिता को तुमने अनन्त काल से पाला है । ओह ! तुम कितने पुराने हो ! मेरे पूज्य स्वदेश ! यह हिमालय के बर्फ से ढका हुआ तुम्हारा उच्च श्वेत शिर इसकी गवाही है । वह कैसा प्यारा है । कितना ठण्डा है ! कैसा सुन्दर है ! सच है तभी तो तुम में सबका सब कुछ सह सकने की क्षमता है ।

---

* यह काव्य सन् २१ में सत्याग्रह संग्राम छिड़ने पर देश भक्ति से प्रेरित हो कर लिखा गया था ।

गौरी का अगौरव, गज़नवी का गजब, नादिर की नादानी और तैमूर की कत्ल, यह सब चुपचाप—बिलकुल चुपचाप सह लिया। जब तुम से पूँछा "क्या हुआ?" तो तुमने हँस कर कहा "कुछ नहीं, वह सब अबोध बालकों की नादानी थी।" आँखों में मौज थी, होठों पर मुस्क्यान, मन में सफाई थी, हृदय में उमङ्ग, न गिला न शिकवा। यह सब तुम्हारी सफेदी को सज गया।

तुम्हारे पुत्रों ने अपनी क्षमता से उन्हें पकड़ा, बाँधा पर क्षमा से छोड़ दिया। उन्हीं को उन्होंने छल से मारा, लूटा और क्या २ न किया? पर जब वे तुम्हारी गोद में आपड़े, तो तुम्हारे लाड़िले तुम्हारे पास आये, उन्होंने रोष भरे नेत्रों से कहा "पिता! यह क्या? तुम्हारी शिक्षा के कारण हमने इन्हें क्षमा किया। पर इन्होंने छल से हमारा सर्व नाश किया।" तब तुमने उन्हें छाती से छिपा कर कहा—जाने दो, ये बिना माँ बाप के तुम्हारे बाप को अपना बाप बनाने आये हैं। ये तुम्हारे भाई हैं। लो! इनका हाथ लो!!" इतना कह कर उनका हाथ अपने पुत्रों के हाथ में मिला दिया। तुम इतने उदार हो? ऐ! मेरे महान् स्वदेश!

ऐ! मेरे स्वदेश! बताओ, मेरी माता तुम्हारी कौन थी? और पिता कौन थे? वह सदा तुम्हारी तारीफ़ के पुल बाँध

देते थे। जब मैं माता की स्नेहमयी छाती में चिपक कर दुग्धपान करता तो वह एक गीत गाती थी। उसका अभिप्राय शायद यही था कि यह दूध तुम्हारा है। और पिता जब मधुर २ फल लाते और छील कर खिलाते तो किस्से सुनाते थे। उनका अभिप्राय भी शायद यही था कि ये फल तुम्हारे हैं। मेरे अच्छे स्वदेश! बताओ तो! क्या वह दूध तुम्हारा था? क्या वे फल तुम्हारे थे? वह मिठास, वह स्वाद, वह प्राणोत्तेजक आनन्द क्या तुम्हारा था? सच कहना! ऐसी मधुर सुघड़ाई तुम्हारे पास कहाँ से आई?

मेरे माता पिता अब नहीं हैं पर मैं अपने को अनाथ क्यों कहूँ! जब कि तुम मेरे पूज्य, मुझे गोद में लिये हुए हो। तुम मेरे, मेरे पिता के, उनके भी पिता के, उनके भी पिता के अनन्त काल से पूज्य पूर्वज हो, सदा से रहे हो, सदा रहोगे। ऐ मेरे स्वदेश! अब तक तुम कहाँ छिपे थे छिपे ही छिपे तुम ने चुप चाप मेरे लिये कितना कष्ट सहा? तुम ने देखा बालक भूख के मारे छटपटा रहा है। तुम से न रहा गया। तुमने कड़ी धूप पीठ पर सही। फिर नंगी छाती किये मूसलाधार वर्षा में खड़े भीगते रहे। दाँतों में अँगुली दे कर पीठ पर हल चलवाया। इसके बाद पौध उगी। और तुमने अपना ओज पिला २ कर पाला। जब पक गये तो मैं उछलता हुआ गया। रस भरे पके फल ले

आया कुछ माता को दिये, कुछ पिता को, बाकी आप खाये। तब तुम हिले न डुले, न यह कहा कि ये मेरे हैं न यह कहा कि ये मेरे परिश्रम के हैं केवल उत्फुल्ल नयनों से खड़े मुस्कराते, हमारे उस सुख और आनन्द को देखते रहे। तुम हमारे कौन हो? प्यारे स्वदेश!

जब मैं छोटा था तब मैं देखा करता था कि तुम्हारी गोद बहुत छोटी है। पर ज्यों २ मैं बढ़ता जाता हूँ तुम्हारी गोद फैलती जाती है। जिस से मुझे खेलने खाने में तङ्गी न हो। मैं जन्म भर बढ़ूँगा पर तुम भी बढ़ते रहोगे। न जाने तुम कितने बड़े हो।

अँधेरी रात में, कड़कड़ाती बिजली में, बरसते मेह में, झिलमिलाती दोपहरी में, प्लेग में, हैजे में, महामारी में, अकाल में सदा हम यह कह कर ढारस बँधा लेते हैं डर क्या है? तुम्हारी गोद ही में हैं।

और आमोद प्रमोद की बेला में, स्वस्थ्य की तरङ्ग में, सुख की उमङ्ग में कहते हैं, "हम सब तुम्हारी गोद में आँखों के सामने खेल रहे हैं। अच्छा बताओ तो—क्या तुम हमारे दुख सुख में हँसते रोते भी हो?"

तुम बड़े ही अच्छे हो। सुनते हैं बूढ़े होकर लोग निर्मोही हो जाते हैं पर तुम ज्यों २ बूढ़े होते जाते हो प्रेम बढ़ाते ही

जाते हो। तुम्हारा हो या पराया। जब कोई बालक ज्येष्ठ की दुपहरी में खेत पर कड़ी मेहनत करता है तो तुम पङ्खा ले कर खड़े हो जाते हो। वह जब घोर ताप से व्याकुल हो उठता है वो अमृत की बूंद टपकाते हो! पर झूठ न कहेंगे, कभी २ बचपन की तरङ्ग तुम्हें भी याद आ जाती है, खिलवाड़ करने लगते हो। कभी ऐसी हवा चलाते हो, कि किसी की झोंपड़ी उड़ जाती है, किसी का कपड़ा। और सब तो ठीक है पर यह ऊधम हमें नहीं भाता है। क्योंकि हम ग़रीब आदमी हैं।

इतने दिन से तो तुम्हें जानते ही न थे। अब जाना है। आजकल तुम कैसे हो गये हो? यह तो कहो? तुम पड़े क्यों हो? उठते क्यों नहीं? क्या बूढ़े होने के कारण? पर बूढ़े क्या आज से हो? मुद्दत से हो। तुम्हारे बूढ़े २ बेटों ने तो कुहराम मचा दिया था। तब? तुम कभी २ कराहने भी लगते हो। क्या घाव लगे हैं? पर तुम्हारे अबोध बालक भी घाव खाकर हँसते रहे हैं तुम्हारी देह सूख गयी है। कपड़े फट गये हैं। क्या तुम दरिद्री हो गये हो या रोगी? तुम इतने दीन क्यों हो? मेरे सर्वस्व स्वदेश! ऐं! तुम रोते भी हो? इस प्रयाग की पुण्य भूमि पर तुम्हारे आँसुओं का इतना जमघट! यह तो देखा नहीं जाता।

क्या कहा? 'पूर्व स्मृति' सर्प की तरह डसती है, बिच्छू की

तरह डङ्क मारती है, बिजली की तरह नाशकारी और मृत्यु की तरह भयानक है। हाय! कहाँ गया वह भूत! कहाँ गया वह अतीत!

जिन्होंने तुम्हारा यौवन देखा है वे कहते हैं कि जब तुम अगाध समुद्र के फेनों की उज्ज्वल करधनी पहन कर खड़े होते थे तो संसार की जातियाँ तुम्हारे बाँकपन पर लोट पोट हो जाती थीं।

यह बात सच मालूम होती है। ग्रीष्म की सन्ध्या को नैनी-ताल में, शरद की पूर्णिमा को हरिद्वार की गङ्गा में, बसन्त के प्रभात को कृष्ण की विहार भूमि मथुरा में, वर्षा की दोपहरी को अजमेर में मैं तुम्हारी छटा को देख चुका हूँ, मुग्ध हो चुका हूँ, मर २ गया हूँ, जी २ गया हूँ। वह मनोहरता आँखों में बस रही है, जन्म भर बसी रहेगी।

यह तो तुम्हारे बुढ़ापे की छटा का हाल है, यह तो तुम्हारा लुटा हुआ यौवन है, धुली हुई लुनाई है, बीता हुआ ज़माना है। फिर तुम्हारी जवानी के सौन्दर्य की जो प्रशंसा की जाय थोड़ी है। ऐ मेरे बूढ़े स्वदेश! अब भी कोटि २ प्रवासी तुम्हारे सौन्दर्य के स्मशान की झाँकी करने आया करते हैं।

तुम्हारे नेत्र दीखने में जैसे सुन्दर थे देखने में भी वैसे ही थे। पर अब तो वे बिलकुल धुँधले हो गये हैं तुम्हारे जिन

बाहुओं के बल की इतनी प्रशंसा थी कि जिन से उपार्जित भोगों को संसार ने भोगा था वे ऐसी सूख गयी हैं! इन्हीं पैरों से तुम ने जल थल और आकाश के द्वारा भूमन्डल की यात्रा की थी? पर अब इन से उठ भी नहीं सकते। हाय! यह कैसी दशा है? प्यारे स्वदेश; न रोओ तो करो भी क्या?

तुम्हारी वह झलक एक बार, सिर्फ एक बार यदि किसी तरह दीख जाय तो उस पर मैं सर्वस्व वार दूँगा। दिखाओगे क्या?

जिन्होंने तुम्हारा यौवन लूटा था वे कैसे निर्दयी थे? ऐसी सरलता! ऐसी उदारता! ऐसी महत्ता! वीरता! क्षमता! यह सब अलौकिक देख कर भी उनके हृदय में तुम्हारी भक्ति न हुई, उन्होंने तुम्हें न समझा। पहिले तो तुम्हारी सरलता और उदारता से लाभ उठाया, पीछे लूट मचाई। जब कुछ न रहा तो लात मार कर छोड़ दिया। गज़ब किया! सितम किया! उस समय मैं न था! हाय! मैं न था!!

यह सच है कि मैं तुच्छ हूँ, अशक्त हूँ, अबोध हूँ। पर उस समय मैं अपनी सब शक्तियों की बलि कर-देता। मैं अपनी आत्मा की बाजी लगा देता। मैं अपने हृदय का खून बहा देता। मैं तुम्हारे बदले उनका अत्याचार सहता, इतनी धीरता से सहता कि वे घबरा जाते, थक जाते अत्याचार करना ही भूल जाते, उससे उन्हें घृणा हो जाती।

मैं बेशक मर जाता। पर तुम तो बच जाते। मेरा जीवन ही क्या है! किसी को जिलाना एक ओर रहा, मैं स्वयं भी कुछ नहीं जी रहा हूँ। तुम यदि जीवित रहते तो न जाने कितने अछूत, कितने अनाथ, कितनी बिधवाएँ, जो मनुष्य हो कर भी मनुष्यों के अधिकारों से वंचित किये गये हैं और जो तुम्हें अपना गौरवान्वित पिता कहते हैं और सचमुच तुम्हारे पुत्र हैं। पर! पर वे कौवे और कुत्तों की तरह! उन से भी निकृष्ट जीवन व्यतीत कर रहे हैं, भरी जवानी में मर रहे हैं, आधे दिन जीते हैं वे भी काटे नहीं कटते। ये सब क्या ऐसे रहते हैं? हँसते, खेलते और दीर्घजीवी होते? आह! वह दिन कैसा सुन्दर होता!

प्यारे! गया सो तो गया। अब बोलो तुम्हारे लिये क्या करूँ? यह सच है कि मुझ में शक्ति नहीं है। पर मेरे हृदय को मुझ से कौन छीन सकता है? अच्छा क्या मेरे रक्त से तुम्हारी सूखी भुजाएँ पुष्ट हो सकती हैं? अथवा मेरे प्राणदान से तुम्हारा प्राण जाग सकता है? मैं तुम्हारे लिये उत्सर्ग हूँ, मेरा मन उत्सर्ग है। तन उत्सर्ग है, लोक और परलोक भी उत्सर्ग है। पर वह क्या तुम्हारे लिये तनिक भी उपयोगी होगा?

पड़े २ तुम्हारी पाचन शक्ति नष्ट सी हो गयी है। अब तुम्हारी सारी क्रियाएँ बेसमय होती हैं। बताओ तुम्हारी वह

संजीवन बूँटी कहाँ है ? उससे तुमने कितनों का अच्छा किया है, स्वयं क्यों नहीं अच्छे होते ! क्या जीने की साध मिट गयी है ? .'

यह सम्भव है कि इस जीवन संग्राम से तुम विरक्त हो उठे हो। क्योंकि तुम सदा से उदासीन और एकान्तप्रिय रहे हो। सम्पदा से तुम्हें अजीर्ण हो गया था, सुख से अरुचि हो गयी थी। बाहुल्यता में ऐसा होता ही है। पर हम तुम्हारे सिवा किसे प्यार करें ? किसकी गोद में खेलें ? यह सुख, यह गौरव, यह मौज और कहाँ हैं ?

यह सुहावने सुनहरे खेत, यह स्वच्छ नीलाकाश, यह बड़े २ हाथियों की पंक्ति. यह मधुर-रसीले आम के निकुंज बन, यह गौरी-गङ्गा,-श्यामा-जमुना, बताओ और कहाँ हैं ? बताओ और किस देश की मिट्टी में करोड़ों अश्वमेघ और राजसूय यज्ञ सत्रों की विभूति मिल रही हैं ?

आओ ! मेरे प्यारे ! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। अपनी जवानी से भी अधिक प्यार करता हूँ। अपनी बुद्धि, विद्या, धन, पुत्र, स्त्री सब से अधिक प्यार करता हूँ। यह सब तुम पर न्यौछावर हैं। मेरे साथ ये सब भी तुम्हारे हैं। आओ स्वामी !

एक बार मैं साहस करके देखूँ कि मेरी भुजा में, मस्तक में, आत्मा में, कुछ बल है भी या नहीं ? जिससे तुम्हें खड़ा कर सकूँ। नहीं तो फिर हम तुम दोनों मरेंगे। तुम इसी हताश बुढ़ापे में और मैं ? मैं इसी चाह की जवानी में।

What a wonderful essay it is?



मा गंगी !*

जन्म लेने के बाद जब से होश सम्हाला तभी से मैंने तुम्हें इस तरह सूखा देखा है। पहिले तो मुझे मालूम ही न था कि तुम कभी बहुत ही हरी भरी थीं, पर जब व्यास और बाल्मीकि से जान पहचान हुई, रामायण और महाभारत से बात चीत हुई। तब उन की ज़बानी पता लगा कि तुम सदा से ही ऐसी दुबली पतली, सूखी साखी और मलिन नहीं हो। बाल्मीकि कहते थे और व्यास भी उनकी हाँ में हाँ मिलाते थे कि तुम्हारी मोती जैसी उज्ज्वल शोभा थी, निखरा हुआ चांदी सा रंग था शंख जैसा गम्भीर स्वर था और हाथी जैसी मदमाती चाल थी। नववधू जैसा प्राणोत्तेजक हास्य था, अमृत जैसा जीवनप्रद तुम्हारा रस था और माता जैसी शान्ति प्रद तुम्हारी थपकियां थीं। भव ताप से तप्त प्राणी माया मोह से घबरा कर काम क्रोध से जर्जर हो कर-

* यह काव्य एक बार गंगा यात्रा के समय स० १६१६ में लिखा गया था।

1973

संसार से ऊब कर कहीं भी शान्ति न मिलने पर जब तुम्हारी गोद में आते थे तो तुम्हारे एक ही दिन के प्यार से तुम्हारी उस वात्सल्य मय दृष्टि से ही वे मुनि हो जाते थे। तन, मन, आत्मा सब शीतल, शुद्ध और शान्ति मय बन जाती थी तुम्हारी गोद छोड़ कर कहीं जाने को जी नहीं चाहता था। तुमने अपने ही आँगन में अपनी ही आँखों के सामने उनकी कुटिऐं बनवा रक्खीं थीं। तुम प्रातःकाल प्रातः श्री धारण करके ऊषा की लाली से अपनी मुख कान्ति को प्रतिबिम्बित करती हुई और प्रभाती के स्वर में लोरियाँ गाती हुई जब उन अपने बच्चों को—हाँ बूढ़े बच्चों को जगाने उनके द्वारा पर जातीं—तब तुम्हारा कल २ निनाद सुन कर वे विनिद्र हो कर देखते—तुम उनकी ओर उत्फुल्ल नयनों से देखती हुई मुस्करा रही हो—अपनी ओर बुला रही हो। तब ? तब वे तुम्हारे बालक ! बूढ़े बालक ! अपने तपस्वी पन को भूल कर अपनी ज्ञान गरिमा को एक ओर रख कर, अपनी सफेद डाढ़ी की परवा न कर के —मोहान्ध की तरह, हाँ, छोटे, बिल्कुल छोटे बालक की तरह—दौड़ कर तुम्हारी गोद में जा कूदते, लोटते, पोटते, ऊधम मचाते और अपनी उस बहुत दूर की अतीत बाललीला को करते थे। और तुम ? तुम भी यह भूल जाती थीं कि मेरे ये बच्चे बड़े हो गए हैं, ज्ञानी हो गए हैं—तुम

उन्हें मल २ कर, धो कर न्हिला धुला कर शरीर को हरा और मन को भरा करके हँसा करती थीं। आखिर तो तुम माँ थी माँ के सामने बेटे क्या कभी बूढ़े हो सकते हैं?

किन्तु माँ! उस दिन मैं तुम्हारे घर गया था। कार्तिक का पर्व था सभी जा रहे थे—मैं क्यों न जाता? जाती बार कितनी हौंस थी, मन में उमङ्ग भर रहीं थीं रास्ते के कष्ट क्या कहूँ? रात को जंगल की कड़ी सर्दी में सिकुड़ गया, दिन को चमचमाती धूप में झुलस गया।

बैलगाड़ी की सवारी थी, कच्ची, धूल कीचड़ और गड्ढों से भरी सड़क थी। गले की टाल को टुल २ करते बैल अपनी मंद गति से जा रहे थे! ऊपर सूरज तप रहा था, उसी तपते सूरज के तेज चाँदने में मैं अपनी आँखें ऊँची उठा कर दूर—अति दूर जहाँ के वृक्ष काले २ परछाईं से दीखते थे, जहाँ धरती आसमान मिल गये थे, देखता हुआ मन से पूछता था 'गंगी कितनी दूर है? बालिका सरस्वती ने पूछा—भैया गंगा कितनी दूर है? बालक विजय ने कहा—भैया! गंगा कितनी दूर है? मैंने कुछ मौज के स्वर में कहा 'वह आ रही गंगा। वह आ रहा, बालक ताली बजा कर हँसते २ बोल उठे आहा जी! हम खूब लोट २ कर न्हावेंगे। सरस्वती बोली हम चाँदी के रेत में सोने का घरुआ बनावेंगे। बच्चे खिल रहे थे, उनके चेहरे धूप में

लाल हो रहे थे। हमें जितना उत्साह था उतना बैलों में नहीं था। बेचारे अबोध पशु थे! वे उसी तरह एक रस धीमी गति से चल रहे थे।

रास्ता कट रहा था, गाड़ी चल रही थी, सूरज ढल रहा था, धूप पीली हो रही थी, दूर के पेड़ धुँधले हो रहे थे खेतों का रंग गहरा हो रहा था। सड़क की धूल पर पास के पेड़ों की परछाईं छा रही थी। बैल थकावट में चूर झूमते हुये, नथुनों से बड़ी २ सांस फेंकते, मञ्जिल पूरी होने पर दाना और आराम की आस में हिम्मत बांध कर उस भारी गाड़ी को खींच रहे थे। गंगी अभी दूर थी।

नये प्रभात की पहली किरण जब गंगी को छू रही थी तब पहली बार मैंने उसे देखा। यद्यपि मेरी दृष्टि और उस दृश्य के बीच अभी अन्तर था। मेरे चारों ओर जंगल का सन्नाटा था, खेतों और पौदों की लहर काली-वृक्षों की छाया भयावनी हो रही थी, बहुत दूर पूर्व में उजेला था। दूर पर लम्बे २ ताड़ और एरण्ड के वृक्ष दीख पड़ते थे। वृक्षों पर कौवे बोल रहे थे। गाड़ी का पहिया चूँ चूँ कर रहा था। सरस्वती और विजय सो रहे थे। मैंने एकायक देखा! उन लम्बे ताड़ और एरन्ड के वृक्षों के परे श्वेत चाँदी की चादर बिछी है और उस के परे एक ज्योतिमयी रेखा चमक रही है। मैंने

कहा अम्मा ! वही न गङ्गा है ? अम्मा की लटें बिखर रही थीं उन्हें एक ओर उठा कर उन्हों ने कहा—यही गंगा महारानी है। उन्होंने हाथ जोड़ गद् गद् कन्ठ से कहा "गंगा मैया तुम्हारी जय हो ! जय गंगे रानी !

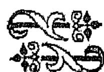
हर्ष से मेरे नेत्र फूल उठे। हृदय नाचने लगा। बैल मोटी २ झूल ओढ़े झूमते २ बढ़ रहे थे। मैंने उतावली से कहा— सरस्वती ! विजय ! उठो गङ्गा आ गयी। माँ ने कहा रहने दो सर्दी है ज़रा सो लेने दो, बच्चे हैं। मैंने कहा माँ ! मैं तो पैदल चलूँगा। मैं दौड़ा, वहीं, उस कच्ची धूल और लड्डों से भरी सड़क पर, उसी ऊषा के उज्ज्वल अन्धकार में, उसी मीठी सर्दी की बहार में, उसी शरद की बीतती रात में, मैं ! हाँ मैं आपे से बाहर हो कर, अजी पागल हो कर, बिना जूता बाहर दौड़ा, गाड़ी से आगे, बैलों से भी तेज़, बहुत तेज़, मानो बैलों के धैर्य से ऊब गया था, उन्हें उत्साह से चलना सिखाने के लिये मैं दौड़ा। बैल उसी तरह स्वाभाविक गति से चल रहे, थे। मैं आगे निकल गया, बहुत दूर आगे निकल गया। गाड़ी उसके पहिये का चूँ चूँ शब्द, बैलों की टाल का टुलुक २ नाद पीछे रह गया। वायु सफेद हो गयी थी और परछाईं रंगी गई थी, स्थिरता हिलने लगी थी। गाड़ी पीछे थी, मैं एक पुराने बाग़ के किनारे एक कुएँ की कोर पर बैठा एक बार गङ्गा

की ओर और एक बार गाड़ी की ओर देख रहा था। निकट आ कर मैंने देखा! तुम्हारे कुपुत्रों ने तुम्हें धरती पर पटक रक्खा है। और वे हट्टे कट्टे जवान लोग कोई उद्योग धन्धा न कर के तुम्हारी छाती पर चढ़े बलपूर्वक तुम्हारे बुढापे के सूखे स्तन निर्दयता पूर्वक चूँस कर तुम्हें क्षत विक्षत कर रहे हैं, और तुम धूल में पड़ी छटपटा रही हो। हाय! हाय! कर रही हो। कह रही हो कि इन स्तनों में अब कुछ नहीं है। पर वे वहीं डटे थे। मैंने झुंझला कर पूछा तुम कौन हो? उन्होंने निर्लज्जता से कहा—तुम हमें नहीं जानते, जिन के तप से यह पवित्र भूमि प्रसिद्ध हुई है—गङ्गा माता के हम वही गङ्गा-पुत्र हैं, लाओ कुछ भीख दो। सब मूर्ख थे, सब के वेश गुण्डों जैसे थे। मैंने घृणा से मुँह फेर लिया। मैं तुम्हारा सूखा, मलिन, उत्साहहीन रूप देखने और रोने लगा!!

हाय! आज वह तुम्हारी सारी शोभा कहाँ विलीन हो गई! किस अतल पाताल में डूब गई? तुम्हारी ही गोद में न दो दो सहस्र रणपोतों का बेड़ा सहस्रों योद्धाओं को ले कर सुदूर सागर में पहुँचता था। वह चलती फिरती विजयोल्लासित महा नगरी तुम्हारी छाती पर फूल की तरह तैरती फिरती थी! और तुम हिलोरों की थपकियों से उनका प्यार करती थीं।

दिला देती थीं। और उनकी उंगली पकड़ कर अपने सौ काम छोड़ कर आगे २ चल कर उन्हें रास्ता बताती थीं। उत्तर प्रान्तों की घनघोर उपज, करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति, माँ! तुम अपनी अँगिया में छिपा कर दूरदेशस्थ पूर्व वासी अपने बच्चों को दौड़ कर दे जातीं थीं। उन से उस में जो कुछ भोगा जाता था भोगते—जो चूरचार बचती पीत समुद्र और अरब सागर में फेंक देते थे। वहाँ यूरोप और अरब के कङ्गले मुँह बाये इस वितरण की प्रतीक्षा में खड़े रहते थे। जब तुम कल २ करके अपने गम्भीर शरीर को लहराती हुई पर्वत से उपत्यका से मैदान, मैदान से नगर, नगर से सागर की यात्रा करती थीं तब तुम्हें रत्ती भर भी थकान नहीं आती थी। आज तुम्हें क्या हो गया है? मैं इस पार से उस पार तक हो आया मेरी पिंडलियाँ भी नहीं भीगीं। क्या मैं बहुत बड़ा हो गया हूँ? या तुम्हीं सूख गयी हो? हाय! सूख कर काँटा हो गयी हो, जगह जगह शरीर में धूल लग रही है, आज तुम मां! क्यों बिलख २ कर धूल में लोट रही हो? तुम्हारा साफ शरीर मैला और रोगी सा हो गया है। रङ्ग तुम्हारा श्याम पड़ गया है। प्रयाग की पुण्य-भूमि में जब सब से प्रथम चची जमुना और सरस्वती से तुम्हारा संगम हुआ था—तब की याद है? तुमने धवल नई साड़ी पहनी थी—चाची ने नीलाम्बर धारण किया था और

सरस्वती ? सरस्वती का परिधान उसके रङ्ग में मिल गया था। तब मुनियों के जटा जूट वीतराग शरीर तुम्हारे सुख संगम से मोहित हो कर देख रहे थे। प्रेमोन्मत्त हो कर बार २ समाधि से उठ कर तुम्हारी गोद में अतृप्त भाव से तुम्हारा स्तन पान करते थे। बटुक लोग तुम्हारे गम्भीर घोष की ताल पर पवित्र साम गान करते थे। मुनियों की बेदी से गगन स्पर्शी हव्य ज्योति उठ कर दिगन्त को आलोकित करती थी। तुम्हारे चरणों को स्पर्श कर के वायु देव यज्ञ बलि से सन्तुष्ट हो पृथ्वी पर नैरोग्य सुधा वर्षाता था। विष्णु भास्कर अपने प्रखर तेज को प्राणप्रद करता था। आज न रही तुम्हारी—वह आयु, उमङ्ग, और मस्ती—न रहे वे दिन। सरस्वती देव लोक सिधारी, कृष्ण के अन्तर्धान होते ही जमुना विधवा हो कर वैरागिन हो गयीं। एक २ कर के सब सौरभ गया। रह गयी एक श्री हीन छाया—एक धुंधला प्रतिबिम्ब, और एक वेदना की सिस्कारी !!!



खूनी*



उसका नाम मत पूछिये। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आँखों से दूर करने को पागल हुआ फिरता हूँ। पर वह नाम और वह सूरत सदा मेरे साथ है। मैं डरता हूँ, वह निडर है—मैं रोता हूँ—वह हँसता है—मैं मर जाऊँगा— वह अमर है।

मेरी उसकी कभी की जान पहिचान न थी। दिल्ली में हमारी गुप्त सभा थी। सब दल के आदमी आये थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था। वह मेरे पास ही खड़ा

---

* यह कहानी प्रताप में सन् २३ या २४ में छपी थी, उस समय पं० माखनलाल चतुर्वेदी उसका सम्पादन करते थे। उन्होंने लिखा—"खूनी को छाप कर प्रताप निहाल हो गया।"

एक कुत्ते के पिल्ले से किलोल कर रहा था। हमारे दल के नायक ने मेरे पास आकर सहज गम्भीर-स्वर में धीरे से कहा "इस युवक को अच्छी तरह पहिचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।"

नायक चले गये-और मैं युवक की ओर झुका-मैंने समझा शायद नायक हम दोनों को कोई एक काम सुपुर्द करेगा।

मैंने उससे हँस कर कहा "कैसा प्यारा जानवर है!" युवक ने कच्चे दूध के समान स्वच्छ आँखें मेरे मुख पर डाल कर कहा "काश! मैं इसका सहोदर भाई होता!" मैं ठठा कर हँस पड़ा। वह मुस्कुरा कर रह गया। कुछ बातें हुईं। उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया।

दिन पर दिन व्यतीत हुए। अछूते प्यार की धारायें दोनों हृदयों में उमण्ड कर एक धार हो गयीं। सरल-अकपट व्यवहार पर दोनों मुग्ध हो गये। वह मुझे अपने गाँव में ले गया। किसी तरह न माना। गाँव के एक किनारे स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गाँव के जिमीदार का बेटा था। इकलौता बेटा था। हृदय और सूरत का एक सा, उसकी माँ ने दो दिन में ही मुझे बेटा कहना शुरू कर दिया। अपने होश के दिनों में मैंने वहाँ सात दिन माता का स्नेह पाया। फिर चला आया। अब तो बिना उसके मन न लगता था। दोनों के प्राण दोनों में अटक

रहे थे। एक दिन उन्मत्त प्रेम के आवेश में उसने कहा था "किसी अघट घटना से जो हम दोनों में से एक स्त्री बन जाय तो मैं तो तुमसे ब्याह ही कर लूँ।"

नायक से कई बार पूछा, क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा था। वह सदा यही कहते–समय पर जानोगे। गुप्त सभा की भयंकर गम्भीरता सब लोग नहीं जान सकते। नायक मूर्तिमान भयंकर गम्भीर थे।

उस दिन भोजन के बाद उसका पत्र मिला। वह मेरी पाकट में अब भी धरा है। पर किसी को दिखाऊँगा नहीं। उसे देख कर दो सांस सुख से ले लेता हूँ। आँसू बहा कर हल्का हो जाता हूँ। किसी पुराने रोगी को जैसे कोई दवाई खूराक बन जाती है मेरी वेदना को भी यह चिट्ठी खराक़ बन गई है।

चिट्ठी पढ़ भी न पाया था। नायक ने बुलाया। मैं सामने सरल स्वभाव खड़ा हो गया। बारहों प्रधान हाज़िर थे। सन्नाटा भीषण सत्य की तस्वीर खींच रहा था। मैं एक ही मिनट में गम्भीर और दृढ़ हो गया। नायक की मर्म भेदनी दृष्टि मेरे नेत्रों में गढ़ गई–जैसे तप्त लोहे के तीर आँख में घुस गये हों। मैं पलक मारना भूल गया—मानो नेत्र में आग लग गई हो। पाँच मिनट बीत गये। नायक ने गम्भीर वाणी से

कहा "सावधान ! क्या तुम तैयार हो ?"

मैं सचमुच तैयार था। मैं चौंका नहीं। आखिर मैं उसी सभा का परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका दिया। गीता की रक्त वर्ण रेशमी पोथी धीरे से मेज पर रख दी गई, नियम पूर्वक मैंने दोनों हाथों से उठा कर उसे सिर पर चढ़ाली।

नायक ने मेरे हाथ से पुस्तक ले ली। क्षण भर सन्नाटा रहा। नायक ने एका एक उसका नाम लिया और क्षण भर में ६ नली पिस्तौल मेज पर रख दी।

वह छः अक्षरों का शब्द उस पिस्तौल की छओं गोलियों की तरह मस्तक में घुस गया। पर मैं कम्पित न हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियम पूर्वक मैंने पिस्तौल उठा कर छाती पर रक्खी और स्थान से हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाजिर था। अपने पत्र और मेरे प्रेम पर इतना भरोसा उसे था। देखते ही लिपट गया। घर गये, चार दिन रहे। वह क्या कहता है, क्या करता है। मैं देख सुन नहीं सकता था। शरीर सुन्न हो गया था— आत्मा दृढ़ थी—हृदय धड़क रहा था पर विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रातःकाल जलपान करके हम स्टेशन पर चले। ताँगा नहीं लिया, जङ्गल में घूमते जाने का विचार था। काव्यों

को बढ़ बढ़ कर आलोचना होती चलती थी। उस मस्ती में वह मेरे मन की उद्विग्नता भी न देख सका। धूप और खिली। पसीने बह चले। मैंने कहा चलो, कहीं छांह में बैठें। घनी कुंज सामने थी। वहीं गये। बैठते ही जेब से दो अमरूद निकाल कर उसने कहा "सिर्फ दो ही पके थे घर के बगीचे के हैं—यहीं बैठ कर खाने के लिये लाया था—एक तुम्हारा--एक मेरा।" मैंने चुपचाप अमरूद लिया—और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ। वह आधा अमरूद खा चुका था। उसका ध्यान उसी के स्वाद में था। मैंने धीरे से पिस्तौल निकाली घोड़ा चढ़ाया—और कम्पित स्वर में उसका नाम लेकर कहा—"अमरूद फेंक दो और भगवान् का नाम लो। मैं तुम्हें गोली मारता हूँ।"

उसे विश्वास न हुआ-उसने कहा "बहुत ठीक, पर इसे खा तो लेने दो।" मेरा धैर्य छूट रहा था। मैंने दबे कण्ठ से कहा "अच्छा खा लो।" खा कर वह खड़ा हो गया। सीधा तनकर फिर उसने कहा "अच्छा मारो गोली।" मैंने कहा "हँसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली ही मारता हूँ भगवान् का नाम लो।" उसने हँसी में ही भगवान् का नाम लिया-और फिर वह नकली गम्भीरता से खड़ा हो गया। मैंने एक हाथ से अपनी छाती दबा कर कहा-"ईश्वर की सौगन्ध! हँसी मत

समझो मैं तुम्हें गोली मारता हूँ।"

मेरी आँखों में वही कच्चे दूध के समान स्वच्छ आँखें मिला कर उसने कहा "मारो।"

एक क्षण भर भी विलम्ब करने से मैं कर्तव्य विमुख हो जाता? पल पल में साहस डूब रहा था। दनादन दो शब्द गूँज उठे—वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। दोनों गोली छाती को पार कर गईं।

मैं भागा नहीं। भय से इधर उधर मैंने देखा भी नहीं। रोया भी नहीं। मैंने उसे गोद में उठाया। मुँह की धूल पोंछी। रक्त साफ किया। आँखों में इतनी ही देर में कुछ का कुछ हो गया था। देर तक के लिये बैठा रहा—जैसे मां सोते बच्चे को जागने के भय से—लिये निश्चल बैठी रहती है।

फिर मैं उठा। ईन्धन चुना—चिता बनाई—और जलाई। अन्त तक वहीं बैठा रहा।

बारहों प्रधान हाजिर थे। उसी स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ। नायक ने नीरव हाथ बढ़ा कर पिस्तौल माँगी। पिस्तौल दे दी। कार्य सिद्धि का संकेत सम्पूर्ण हुआ। नायक ने खड़े हो कर वैसे ही गम्भीर स्वर में कहा "तेरहवें प्रधान की कुर्सी हम तुम्हें देते हैं।" मैंने कहा "तेरहवें प्रधान की हैसियत से मैं पूछता हूँ कि उसका अपराध मुझे बताया जाय।"

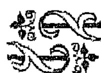
नायक ने नम्रता पूर्वक जवाब दिया--"यह हमारे हत्या सम्बन्धी षड्यन्त्रों का विरोधी था। हमें उस पर सरकारी मुखबिर होने का सन्देह था।" मैं कुछ कहने योग्य न रहा। नायक ने वैसी ही गम्भीरता से कहा "नवीन प्रधान की हैसियत से तुम यथेच्छ एक पुरस्कार मांग सकते हो।"

अब मैं रो उठा। मैंने कहा--मुझे मेरे बचन फेर दो, मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त करो, मैं उसी के समुदाय का हूँ। तुम लोगों में नङ्गी छाती पर तलवार के घाव खाने की मर्दानगी न हो तो तुम अपने को देश भक्त कहने में संकोच करो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं को मैं घृणा करता हूँ। मैं हत्यारों का साथी-सलाही और मित्र नहीं रह सकता-तुम तेरहवीं कुर्सी को जला दो।

नायक को क्रोध न आया। बारहों प्रधान पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे रहे। नायक ने उसी गम्भीर स्वर में कहा "तुम्हारे इन शब्दों की सजा मौत है। पर नियमानुसार तुम्हें क्षमा पुरस्कार में दी जाती है।"

मैं उठ कर चला गया। देश भर में घूमा, कहीं ठहरा नहीं। भूख प्यास, विश्राम और शान्ति की इच्छा ही मर गयी दीखती है। बस अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी

है। मेरा वारण्ट निकला था—मन में आई फाँसी पर जा चढ़ूँ फिर सोचा—मरते ही उस सज्जन को भूल जाऊँगा। मरने में अब क्या स्वाद है ? जीना ही चाहता हूँ। किसी तरह सदा जीते रहने की लालसा मन में बसी है। जीते जी ही मैं उसे देख और याद रख सकता हूँ।



कैदी के प्रति

—(:)⌣(:)⌣(:)—

हथकड़ियों बेड़ियों से जंगली पशु की तरह जकड़ा हुआ वह गाड़ी के डिब्बे में चुपचाप बैठा था। डब्बे के सब दरवाजे बन्द थे। शायद कोई देख न ले या हवा न लग जाय। हर स्टेशन पर गाड़ी रुकती और स्थानीय पुलिस अफसर स्टेशन पर हाजिर मिलता, वह अच्छी तरह पहरेदारों और डब्बे के चाक चौबन्दी की जाँच करता। कोई व्यक्ति डब्बे के पास आने न पावे इसलिए गाड़ी खड़ी होते ही ६ पुलिस जवान दो इन्स्पेक्टर और एक गोरा सार्जेण्ट मुस्तैदी से तन कर हथियारों से लैस हो कर गाड़ी घेर कर खड़े हो जाते थे। कैदी कभी २ आप ही आप हँस पड़ता था।

❀ यह पंक्तियाँ पंजाब केसरी के निर्वासन की एक सत्य घटना के आधार पर लिखी गई हैं।

उसने मौन सा धारण कर रक्खा था। उन ६ जवानों में एक मुसलमान बूढ़ा पंजाबी जवान था। जब गाड़ी चल देती तब यही डब्बे के भीतर कैदी की हथकड़ियों की जंजीर पकड़े रहता था। कैदी बराबर देखता आ रहा था कि बूढ़े के होठ फड़क कर रह जाते हैं। वह कुछ कहने की लालसा भरी आँखों से कैदी को रह २ कर देख रहा है, पर कह नहीं सकता है। कैदी की दृष्टि भी आँखों में न थी, वह गूढ़ जगत में विचर रही थी।

एकाएक उस बूढ़े ने ४ केले जेब से निकाले और जमीन तक झुक कर उन्हें दोनों हाथों में ले कर कैदी के सामने खड़ा होगया और बोला—'मेरे हुजूर'! इस गरीब ना चीज़ की यह नज़र भी कबूल फर्मावें। कैदी ने देखा—ईश्वर से प्रार्थना करने के समय अक्सर प्रेम और विनय तथा भक्ति के जो चिन्ह मनुष्य के मुख पर आते हैं वे उस बूढ़े के मुख पर थे।

कैदी ने एक दृष्टि उसके मुख पर डाली, और एक केला ले लिया। सिपाही ने रो कर कहा—'ये सब मैंने आपके लिये अपने पैसों से खरीदे हैं। मैं ७) रु० का गुलाम आदमी हूँ—मेरी जिन्दगी इस जल्लादी सुर्ख पगड़ी को सिर पर रखते बीत गई। मेरे कमीने पैसे पर दुआ बख्शिये, जिन्दगी में मुझे घमण्ड करने की एक बात हो जायगी, मेरे मुल्क के माँ बाप! कबूल कीजिये, फिर इन कदमों का नियाज़ क्या नसीब होगा?

इतना कह कर बूढ़ा सिपाही कैदी के पैरों पर लोट गया। और उसके सूखे गालों पर आँसुओं की झड़ी लग गई।

कैदी के आँसू टपक पड़े। उसका मौन भंग हुआ। आँसू पोंछ कर उसने बूढ़े का हाथ पकड़ कर कहा—मेरे बुजुर्ग! मेरे पास बैठ जाओ, मैं तुम्हारी इस नियामत को तुम्हारे ही साथ खाकर निहाल होऊँगा।

अभाव +

—()०()—

प्रशान्त तारका हीन रात्रि का गहरा अन्धकार पृथ्वी पर छा रहा था, अमृतसर की प्रशस्त सड़कों पर मनुष्य का नाम न था, उसके दोनों पार्श्वों पर जलती हुई लालटेनों के खम्भे निस्तब्ध खड़े बहुत अशुभ मालूम हो रहे थे। जिन मकानों की खिड़कियों में नित्य दीपमालिका जगमगाती थी-उन में भी गहरा अन्धकार छा रहा था। एक विशाल अट्टालिका में एक युवक बैठे अन्धकार में दूर तक आकाश की ओर देख रहे थे। वे उस अभेद्य अन्धकार में मानों कुछ देख रहे थे। उन का मन उन्हें सुदूर फ्रान्स के युद्ध क्षेत्र में ले उड़ा था-

---

+ इस कहानी में जलियान वाला बाग के संस्मरण और उन पर पंजाब केसरी लाजपत राय के रक्ताश्रु प्रदर्शित हैं।

चारों तरफ प्रचण्ड युद्ध की ज्वाला, तोपों का गर्जन, जहरीली गैसों के सरसराहट, आहतों की चीत्कार, बम प्रपात का हाहाकार मानों वे उस शून्य आकाश में जाग्रत से देख रहे थे। उन्हें सहस्त्रों मरणोन्मुख व्यक्तियों में से सहसा एक अद्भुत मुख की अलौकित आभा दीख पड़ी। जो लाशों के ढेर में से साहयता के लिए संकेत कर रहा था। किस प्रकार प्राणी पर खेल कर वे उसकी साहयता को अग्रसर हुये थे, और किस प्रकार उस मुख के वीर स्वामी को उत्कृष्ट वीरता के उपलक्ष में विक्टोरिया क्रास मिला था। १।। वर्ष पूर्व का यह चित्र उनकी आँखों में घूम गया। वे एक हाय कर उठे, हाय! वही वीर पुरुष, वही सिंह नर, वही युवा-सुन्दर युवा जो कल रात मेरे साथ भोजन कर गये थे, अभी अभी कुछ घण्टे प्रथम हँस रहे थे। जलियान वाला बाग में मुर्दा पड़े हैं, वह उनका एक मात्र २।। वर्ष का शिशु भी वहाँ लोहू लुहान पड़ा है, उनकी लाश उठाने का इस समय कोई प्रबन्ध नहीं। ओफ़! हत्यारे डायर! युवक सिसकियाँ ले कर रोने लगे-रोते रोते ही धरती पर लेट गये।

२

टनन्-टनन् टेलीफोन चिल्ला उठा। युवक ने चौंक कर देखा। उठ कर कहा-हलो, आपका नाम ?

"क्या आप डाक्टर साहब हैं? मैं धनपतराय हूँ।"

"जी हाँ, कहिये।"

ओह मेरी स्त्री के मरा बच्चा हुआ है। वह बेहोश है, कृपा कर अभी आइये, वरना उसके प्राण बचना कठिन हैं।

"परन्तु यह तो बड़ा कठिन है, शहर में तो मार्शला हो रहा है, कौन इस समय घर से बाहर निकलेगा? जान किसे भारी है। यह डायर की अमलदारी है।"

"परन्तु डाक्टर साहब! वह मर रही है, क्या आप भी मेरा साथ न देंगे। मैं आपका २० वर्ष का पुराना मित्र, सहपाठी और भाई हूँ।

"युवक का माथा सिकुड़ गया। उसके होंठ काँपने लगे।"

"हलो"

"जी हाँ"

"वह ठण्डी हो रही है। घर की स्त्रियों का रोना बन्द करना मुझे कठिन हो रहा है।"

"मैं आ रहा हूँ।"

डाक्टर ने जल्दी से वस्त्र पहने और वे उस शून्य राज मार्ग में अपनी ही पदध्वनि से स्वयं चौकन्ने होते हुए चले। नाके पर पहुँच कर गोरे सार्जन्ट ने बन्दूक का कुन्दा उनकी ओर घुमा कर कहा—"कौन?"

उन्होंने निकट जाकर कहा—मैं हूँ डा० मेजर R. L. Kapur M. D.

"मगर आप जा नहीं सकते, आप पास दिखाइये।"

"पास मेरे पास नहीं है। एक रोगिणी मर रही है, मेरा कर्त्तव्य है कि मैं जाऊँ।"

"वैल, तुम कीड़े के माफ़क रेंग कर जा सकता है।"

"क्या कहा कीड़े के माफ़क ?"

"यस, इस गली में इसी तरह जाना होगा। नीचे झुको।"

"कदापि नहीं। मैं भी अफ़सर हूँ—और ३५ नं० रेजीमैन्ट का कर्नेल मेजर हूँ।"

"मगर काला आदमी हो।"

"इस से क्या ?"

"कीड़े के माफ़क रेंग कर जाओ—तुम हिन्दुस्तानी।"

यह कह कर गोरा यम वज्र की तरह तन कर सन्मुख खड़ा हो गया। डाक्टर ने क्रोध और वेदना से तड़प कर एक बार होंठ चबा डाला और फिर वह धैर्य धारण कर धरती पर लेट गये। उनके वस्त्र और शरीर ग़लीज़ कीचड़ में लतपत हो गये। उन्होंने पड़े ही पड़े पुकारा—

"लाला धनपत राय ?"

धनपत राय ने द्वार खोल कर रोते-रोते कहा ! ओफ़ ! अब भी शायद बच जाय—पर क्या आपको भी उन ज़ालिमों ने

कीड़े की तरह......(धनपत राय डाक्टर के पैरों के पास गिर कर रोने लगे)।

डाक्टर ने कहा–धीरज ! ला० धनपत राय रोगी कहाँ है ?

रोगी बेहोश अवस्था में था। आवश्यक उपचार करने के बाद डाक्टर ने कहा–क्या थोड़ा गर्म पानी मिल सकेगा ?

"पानी, नहीं, घर में सुबह से एक बूँद भी पानी नहीं है।"

कुँए पर निर्लज्ज गोरों का पहरा है वे पानी नहीं भरने देते ! दो बार मैं गया पर पीट कर भगा दिया गया।

डाक्टर ने बाल्टी हाथ में लेकर कहा-किधर है कुँआ ?

"आप क्या इस अपमान को सहन करेंगे ?"

"डाक्टर चुपचाप चल दिये।"

कुँए पर पहुँचने पर ज्यों ही उन्होंने कुँए में बाल्टी छोड़ी त्यों एक गोरे ने लात मार कर कहा–साला ! भाग जाओ।

डाक्टर साहब ने तान के एक घूँसा उस के मुँह पर दे मारा। क्षण भर में ४-५ पिशाचों ने बन्दूक के कुन्दों से अकेले डाक्टर को कुचल कर धरती पर डाल दिया।

साहस करके डाक्टर उठे और कीड़े की तरह रेंगते हुए गली के पार को चले। और किसी तरह अपने घर के द्वार पर आकर वे फर्श पर पड़ गये।

\+ \+ \+ \+

प्रभात हुआ। उनकी पत्नी ने आकर देखा वे औंधे मुँह जमीन पर पड़े हैं। उसने उन्हें जगाया और उनकी इस दुरवस्था पर आश्चर्य प्रकट करते हुए संकेत से पूछा—'माजरा क्या है ?'' क्षण भर में घर भर वहीं मौजूद था। सैकड़ों प्रश्न उठ रहे थे, परन्तु डाक्टर साहेब विमूढ़ से बैठे चुपचाप आकाश को देख रहे थे। मानों एकाएक चौंक कर वह उठे। उन्होंने मुट्ठी मीच कर कहा—ओह! कहाँ है वह पंजाब केसरी! आज पंजाब के शेर उसके बिना यों कुचले जा रहे हैं। आज यदि वह होता!!!

डाक्टर साहेब उन्मत्त से होकर उठ बैठे और उन्होंने अपने उन घृणित साहबी ठाट के वस्त्रों को उतार कर फैंक दिया—फिर जेब से दियासलाई निकाल कर उनमें आग लगा दी, धीरे धीरे वह घर की सभी वस्तुओं को ला ला कर आग में डालने लगे। लोग अवाक् हो कर चुप चाप यह होली काण्ड देख रहे थे। अन्त में धीरे गम्भीर-स्वर में उन्होंने कहा—

देश के पुरुषों का सम्मान, सङ्गठन, देश भक्ति और स्वात्माभिमान का कल्पना से होगा।

यह बढ़िया विदेशी ठाट और काट के वस्त्र पहिनना और मोर के पर खोंस कर कौवे की तरह हास्यास्पद बनना अत्यन्त

पाप कम है। मैं आज से यह सब त्यागता हूँ।

३

बम्बई में हलचल मच गई। पंजाब का शेर महायुद्ध के बाद ७ वर्ष में फिर अपने देश में आ रहा है। आज फिर देश उसकी दहाड़ से गूँजेगा। आज पंजाब के आँसू पुछेंगे। आज न जाने क्या क्या होगा। देश भर में धूम मच गई थी। देश भर के महान् पुरुष उस सिंह नर को देखने को दौड़ रहे थे। बाजारों में जय जयकार के शब्द बोले जा रहे थे। सभा-स्थान में तिल धरने को जगह न थी। महामना तिलक व्यास पीठ पर विराजमान थे। पंजाब केशरी ने उठ कर गर्जना शुरू की। जन समुद्र हिलोरें मारने लगा।

'मेरे देश की बहिनो और भाइयो! मैंने विदेश में सुना है कि पंजाब ने जलियान वाले बाग में मार खाई है और वे पंजाबी शेर जिन्होंने फ्रान्स के मैदान में अपनी संगीनों की नोक पर इंग्लैंड की नाक बचाई थी। अपने ही घर के द्वार पर कुत्ते की तरह शिकार किये गये हैं। यदि कोई पंजाबी बच्चा यहाँ है तो वह मुझे बताये कि उसके लिए उसने क्या किया है?'

\+ \+ \+ \+

सभा में सन्नाटा था। सुई गिरने का शब्द भी होता। आप ने आवाज़ ऊँची करके कहा—

"पंजाबी नहीं, भारत का कोई भी सच्चा सपूत बतावे कि उसने इस अपमान का कोई बदला लिया है ? मैंने सुना है कि वहाँ मर्दों को कीड़ों की तरह रेंग कर चलाया था और स्त्रियों की गुप्तेन्द्रियों में लकड़ियाँ डाल कर उन्हें कुत्ती-मक्खी और गधी कहा गया था। अरे देश के नौजवानो ! वे किस की मां बहिनें और बेटियाँ थीं ! उन पिताओं, भाइयों और पतियों ने क्या किया है ?"

भीड़ में लोग रो रहे थे। एक सिसकारी आ रही थी। शेर ने ललकार कर कहा—

"हाय ! मुझे उस दिन उस स्थान पर मौत नहीं नसीब हुई ? अगर मैं जानता कि पंजाब के शेर बच्चे भी अब ऐसे बेशर्म हो गये हैं तो मैं वहीं ज़हर खा लेता और यहाँ अपना मुँह न दिखाता।"

जनता बर्साती समुद्र की तरह उथल-पुथल हो चली। बहिन बेटियाँ सिसक-सिसक कर रो पड़ीं, और वृद्ध नर-रत्न तिलक की अश्रु-धारा बह चली।

पंजाब केशरी का कण्ठ-स्वर काँपा। वह अब बोलने में असमर्थ होकर नीची गर्दन किये बैठ गये।

सहस्रों कण्ठों से ध्वनि निकली। पंजाब केशरी की जय ! हम पंजाब केशरी की आज्ञा से प्राण देने को तैयार हैं।

"स्वामी श्रद्धानन्द मारे गये।"

"क्या कहते हो ?"

"अभी फ़ोन आया है, एक मुसलमान ने उन्हें गोली से मार डाला। वह पकड़ा गया है ?"

"पकड़ा गया है ? यह कहते-कहते लाला लाजपतराय उठ खड़े हुये।"

इसी समय ३--४ भद्र पुरुषों ने प्रवेश करके समाचार की सत्यता बयान करके कहा—"वहाँ जाने की चेष्टा न करें। मार्ग अशान्त है, नगर में उपद्रव होने की अशङ्का है।"

लाला जी धीरे-धीरे बैठ गये। विषाद के स्थान पर उनके मुख पर एक हास्य रेखा और नेत्रों में एक नई ज्योति का उदय हुआ उन्होंने कहा—

"यह सम्भव ही नहीं कि मुझे यह मौत नसीब हो ! मैं तो अब इतना बूढ़ा हो गया हूँ कि चाहे जब चुपचाप मौत धोखा दे जाय। कुछ उम्र से कुछ रोग और कष्ट से।"

परन्तु, एक भद्र पुरुष ने कहा—"लाला जी ! आप तो अब उतने कष्ट में नहीं हैं। ऐसेम्बली में तो कुर्सियाँ गद्देदार और उन में बिजली के हीटर लगे होते हैं।"

"लाला जी व्यङ्ग को पीकर बोले—"यह सब कुछ होने पर भी वैसा कुछ सुख नहीं है।"

"यदि ऐसा न होता तो आप से उधर जाने की आशा न थी, वह आपको शोभा देने योग्य स्थान भी तो नहीं। आप वे पुरुष हैं जिनके नाम से गवर्नमेंट काँपती रहती थी—आप अब जब उस गोल पिंजरे में बैठ कर बोलते हैं तो ऐसा ज्ञात होता है कि कोई कुशल अभिनेता—अभिनय कर रहा हो।"

लाला जी ने विषाद-पूर्ण दृष्टि से कहा—

"क्या सचमुच ?"

भद्र पुरुष कुछ लज्जित हुये। परन्तु लाला जी ने एक बार आकाश को ताकते हुये कहा—

"हाय ! श्रद्धानन्द ! आज तुमने मुझे जीत लिया।"

५

"क्या आपने सुना ?"

"रोज सुनता हूँ।"

"आप क्या इनका मुँहतोड़ उत्तर नहीं देंगे ?"

"नहीं।"

"आप चुपचाप सब सुन लेंगे ?"

"हाँ।"

"पर लोग मर्यादा से दूर हो रहे हैं।"

"क्या कहते हैं ?"

"कहते हैं आप वतनफ़रोश हैं।"

"और ?"

"आप देश-घातक हैं।"

"और ?"

"आप कायर हैं, आरामतलब हैं, कष्ट नहीं सह सकते।"

"और ?"

"आप देश और देश के बदनसीबों से रुपया ऐंठते हैं।"

"आह ! यहाँ तक, और ?"

"आपके कारण पँजाब लज्जित है।"

"केवल पंजाब ही न ? शुक्र है।"

"आर्य-समाज आपको अपना सदस्य नहीं मानती।"

"अच्छा, मैं कल त्याग-पत्र भेज दूँगा।"

"मद्रास अछूतोद्धार के फण्ड में अब एक रुपया भी न रहा।"

"यह लो चैक बुक-जो बंक में है सभी भेज दो।"

"सभी ?"

"है ही कितना ५०-६० हजार होगा।"

"आप खायेंगे क्या ?"

"तब क्या पंजाब के घरों में मुझे रोटियाँ भी न मिलेंगी ?"

"लाला जी ने एक हास्य बखेरा और एक मोती टप से गिराया।"

"अभी उस दिन तो आप १ लाख रुपये अनाथों के लिए और गढ़वाल के लिए दे चुके हैं।"

"यह उस रकम से बचा हुआ धन है।"

"आगे कैसे काम चलेगा?"

"आगे देखा जायगा।"

"१॥ लाख अस्पताल को भी आप दे चुके हैं।"

"वह तो सब जायदाद के बेचने से ही हो जायगा।"

"लाला जी! आपके बाल-बच्चे भी तो हैं?"

लाला जी ने कठिनता से आँसू रोक कर कहा—मेरे बच्चों ही के लिए तो यह सब कुछ है।

"ओह! लाला जी! आप को वे स्वार्थी बताते हैं।"

"ठीक ही है।"

"आप देवता हैं।"

"जी चाहे जो समझ लो—परन्तु यह रुपया कल ही भिजवा देना। अब शरीर थक गया है, अपना अपना काम सम्हाल लो अब युवकों का आगे बढ़ना उपयुक्त है। वे सच कहते हैं कि अब मैं आराम तलब हो गया हूँ।

६

सन्नाटा सा फैल गया है। पंजाब की जान सी निकल गई है। इस शरीर में कहाँ वह चैतन्यता थी। आज उसके नष्ट होने

पर शरीर निर्जीव पड़ा रह गया। आज पंजाब का बच्चा २ जानता है कि उस सिंह पुरुष का अभाव पूर्ण होना शक्य नहीं। पंजाब के लाखों युवक मानों अनाथ हो गये! पंजाब की शोभा मारी गई! पंजाब का मानों सिर कट गया! पंजाब खो गया! अब पंजाब का धुरी कौन होगा? कौन पंजाब के सिर पर हाथ धरेगा कौन पंजाब के अस्तित्व को क़ायम रखेगा? कौन पंजाब के बढ़ते हुए तूफ़ान को शमन करेगा? आज पंजाब की आत्मा का अभाव है, आज पंजाब की लाश पड़ी हुई है। ओह! अब पंजाब का क्या होगा?

—श्री चतुरसेन शास्त्री



दिवाली *



दिवाली !

अमावस्या के गाढ़ अन्धकार में असंख्य दीपावली के प्रकाश को लेकर क्या देखने को तुम हमारे घर आई हो ?

ज़रा ठहरो, जो तुम अपने साथ भारत की भाग्य लक्ष्मी को लाई हो, जो तुम्हारे दीपकों में बिना अग्नि का प्रकाश हो, जो तुम्हारे गृह दीपक हमारे स्नेह को चूस कर, हमारे घरों को काजल से काला न कर जायँ, क्षुद्र किन्तु उत्साही प्रेमी पतंगों को तुम्हारे दीपकों से जल मरने का भय न हो तो तुम आओ। हम लज्जा और ग्लानि को भूल कर मलिन अन्धकार में ही तुम्हारा सत्कार करेंगे।

---

* सन् २१ में जब देश व्यापी अन्दोलन चला था तब एक बार दीपावली के दिए लेखक ने नहीं जलाए थे और ये पंक्तियाँ लिखी थीं।

पर जो ऐसा न हो तो तू जा। हमारे घरों में इस ज्वलन्त प्रकाश से देखने योग्य कुछ नहीं है। हमारा यह अन्धकार कुछ बुरा भी नहीं है। इस ने हमें, हमारी मलीनता को, हमारी हीनता और नग्नता को छिपा रक्खा है। हमारे नेत्रों की निस्तेज ज्योति उसे सह भी गई है।

ना। हम पर प्रकाश मत डाल। हम नंगे हैं। हम भूखे हैं। हम रोगी और निराश्रय हैं। थके हुये, मरे हुये, और तिरस्कृत हैं। लांछित हैं स्वार्थी पापी और भीरु हैं। हम पूर्वजों की अतुल सम्पत्ति को नाश करने वाली सन्तान हैं। अपने बच्चों को भिखारी बनाने वाले माता पिता हैं। रूढ़ि की वेदी पर स्त्रियों को बलिदान का पशु बनाने वाले पुजारी हैं। हम खानदानी बाप के कुकर्मी बेटे हैं।

ना। ना। हमें अन्धकार में ही रहने दे। हमें अन्धेरे में ही मुँह छिपाने दे। हमें लज्जा आती है। हम किसी को नहीं देखना चाहते, परस्पर अपने को भी नहीं देखना चाहते। हमें अनन्त काल तक तारागणों से भी हीन, चैतन्य विहीन घोर अन्धकार मयी अमावस्या की ही रात्रि पसन्द है हाय !!!

चित्तौड़ के किले में *



सूरज का मुँह लाल हो गया था और वह धरती में धंस रहा था। आसमान आँखों में आँसू भरे खड़ा था, कोहरा और अन्धकार बढ़े चले आते थे मैं महाराना कुम्भा के कीर्तिस्तम्भ की सब से ऊपर की चोटी पर खड़ा हुआ यह सब देख रहा था !!

ज़मीन से मीलों ऊँची हवा में, राजपूती विध्वंस की हाय भर रही थी। मरे हुए पशुओं की हड्डियों के ढेर की तरह पद्मिनी का महल ढहा पड़ा था, मीरा का मन्दिर कंगाल ब्राह्मण की तरह पैसा २ भीख मांग रहा था; जयमल और फतहसिंह के महलों के मुर्दे दीदे दिखा रहे थे। इन सब के बीच में वर्तमान

---

* ये पंक्तियाँ सन् १९ में पहला बार चित्तौड़ का किला देखने पर वहीं बैठ कर लिखी गई थी।

महाराज का बनाया झकाझक सफ़ेद महल ऐसा मालूम होता था जैसा गोबर के ढेर में ओला पड़ा हो। जैसे विधवा ने बिछुए पहन रक्खे हों। मैंने एक हाय की और कहा हाय! इन निर्लज्ज राजपूतों का बीज नाश क्यों न हुआ !!! इन की मा बांझ क्यों न होगई !!!

मैं पीछे लौटा। अंधेरा हो गया था। जौहरी बाज़ार में सिर नीचा किये जारहा था। एक भी मनुष्य न था दूर तक दीपक न था-दूकानों की जगह पत्थरों के ढेर और जवाहरात की जगह अडूसे के पेड़, बस यही, वह जौहरी बाज़ार था। काले २ वृक्ष मृत वीरों के भूत मालूम पड़ते थे। मुझ से न रहा गया, मैं एक पत्थर पर बैठ कर अच्छी तरह रोया।

एक बकरियों का बड़ा सा रेवड़ सामने होकर गुज़रा, सड़क की धूल आसमान तक चढ़ गई। क्षण भर को मुझे एक मज़ा आया। मैंने सोचा इस धरती पर इसी तरह वीरों की सेना चलती होगी। ऐसी ही धूल उड़ती होगी। मैं उस अंधेरे में बड़े चाव से उन बकरियों को आँख गाड़ गाड़ कर देखने लगा मेरे मन में आई कि दौड़ कर एक बकरी के गले से लिपट जाऊँ और पूछूँ—हे राजपूती जीव! तू आज बकरी कैसे बन गया! अभागे!! बदनसीब !!!

P Krishan

अनूप शहर के घाट पर *

भगवती भागीरथी हर हर शब्द करती हुई बही चली जा रही थी। शीत काल का प्रिय मध्यान्ह हँस रहा था, हम लोग कड़ाके की सर्दी में भोर के तड़के से यात्रा को निकले थे और इस समय गंगा के तीर पर पहुँचे थे।

गंगा के नाम के साथ सदा का आनन्द मय परिचय था बचपन से अब तक गंगा के तीर पर चांदी की रेती में अनेक सफ़ेद रातें कई रंगों में व्यतीत की हैं पर इन दिनों गंगा के स्मरण में रेत मिल गया था। इस बार इस चिर परिचित घाट को देख कर हज़ारों आनन्द स्मृतियों को बलात् विदीर्ण करके एक असह्य विषाद स्मृति ने नेत्रों को सजल कर दिया।

---

* ये पंक्तियाँ सन् २० में अनूपशहर के घाट पर लेखक ने शोक दग्ध अवस्था में लिखी थीं।

मित्र लोग मस्त थे। स्नान किया, हवन किया और झटपट बाजार से दही मिठाई पूरी लाकर उड़ाने लगे। कठ-पुतली की तरह मैं भी चुपचाप खा रहा था। चारों तरफ़ रंग बिरंगे कुत्ते खड़े दुम हिला रहे थे और जीभ लपलपा रहे थे, दो मित्र हाथ में डंडा ले मुस्तैदी से इनका पहरा लगा रहे थे। इन्हीं कुत्तों के झुन्ड में तीन चार कन्याएँ खड़ी थीं, इनके काले कृश हाथ पैर और करुण मुखाकृति देखी नहीं जाती थी। मेरे मित्र अत्यन्त रुद्र स्वर में कुत्तों के साथ ही उन हत भाग्या बालिकाओं को भी दुतकार रहे थे। बालिकाओं को लज्जा थी न ग्लानि, वे फटकार खाकर और भी दीन भाव से दाँत निकाल रिरिया रही थीं।

मैं चुपचाप किसी तरह अन्न के ग्रास गले से उतार रहा था पर कलेजा मुंह को आरहा था। हाय! जिस देश की स्त्रियाँ "असूर्य पश्या" कही गई थीं। उस देश की पवित्र कन्याओं को ये दिन देखने पड़ रहे हैं? ये तीस करोड़ नामर्द हिन्दू चुल्लू भर जल में डूब क्यों नहीं मरते?

मुझ से सो न खाया गया। एक दम छोड़ कर उठ बैठा, दो तीन पूरियाँ कन्याओं के लिये हाथ में लेकर जूठे दोने कुत्तों के आगे डाल दिए। ओहो हो!!! देखो देखो—कुत्तों के झपटते ही तीनों बालिकाएँ भी झपट पड़ीं और कुत्तों के मुंह

से दोनों छीन ले गईं ; मैंने पूरियाँ फेंक दीं, और हा हा कार करता गंगा की ओर दौड़ा, मित्रों ने पकड़ कर पूछा—क्या हुआ मैं सीढ़ियों पर बैठ कर रोने लगा। ठीक सात महीने प्रथम--इसी घाट पर इसी तरह जी भर कर रो गया था। अन्तर केवल इतना था—उस दिन एक महाभाग स्त्रीरत्न के लिए रोया था और आज अपने गुलाम देश नामर्दों की जन्म अभागिनी लाचार कन्याओं के लिए।

उस चिरसहचर घाट पर क्या अब फिर बचपन के आनन्द, किलोल और हास्य की संभावना हो सकती है?



BAL KRISHAN

क्रांतिकारिणी *

[आयुर्वेदाचार्य श्रीयुत चतुरसेनजी शास्त्री]

(१)

गर्मी बड़ी तेज़ थी। पर क्या किया जाय, मित्र की कन्या के विवाह में तो जाना जरूरी था। तबियत ठीक न थी। छोटे बच्चे के चेचक निकल आई थी। पत्नी ने बहुत ही नाक-भौं सिकोड़ी, पर मुझे जाना ही पड़ा। मैं इंटर-क्लास के एक छोटे डिब्बे में अनमना-सा होकर जा बैठा। मन में तनिक भी प्रसन्नता न थी। बच्चे का ध्यान रह-रहकर आता था। लू और धूप दोनों अपने ज़ोर पर थीं, डिब्बे में मैं अकेला था। कोई साथी आ जाय, तो अच्छा! यह मैं सोच रहा था। गाड़ी ने सीटी दी। जो लोग प्लेटफार्म

---

* यह कहानी एक सत्य घटना के आधार पर उस समय लिखी गई थी जब मेरठ में कम्युनिष्टों पर मुकदमा चल रहा था।

पर खड़े थे, लपक कर अपने-अपने डिब्बों में चढ़ गये। मैंने देखा, मेरे डिब्बे में भी एक युवती लपक कर सवार हो गई है।

उसकी आयु २०–२२ वर्ष होगी। वह दुबली पतली थी। नाक कुछ लम्बी, पर सुडौल थी। होंठ पतले और दाँत श्वेत और सुन्दर थे। आँखें बड़ी-बड़ी थीं, उनमें कुछ अद्भुत गूढ़ता छिपी थी। वे चंचल भाव से चारों तरफ नाच रही थीं। साधारणतया वह एक मामूली औरत दिखलाई पड़ती थी, पर ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट मालूम पड़ता था कि वह सुन्दर रही होगी—अब भी वह सुन्दर थी' पर अब चिन्ता और कठोर जीवन उसके शरीर में व्याप गया था।

मैं बारम्बार उसे कनखियों से देखने लगा। मन में कुछ बुरा भाव न था, पर वह कुछ अद्भुत-सी लगती थी। मुझे इस तरह घूरते देख कर वह विचलित हो उठी। वह बारम्बार खिड़की से बाहर मुँह निकाल कर देखती थी, मानो उसके मन में यह था कि कब स्टेशन आये, और वह उतरकर भागे।

मैं अपनी हरकत पर लज्जित हुआ। वह थोड़ी देर में स्थिर हुई, और कुछ रोष-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखने लगी। मैंने झेंपकर जेब से एक अंग्रेजी दैनिक निकाला और पढ़ने लगा।

हठात् अंग्रेजी के संक्षिप्त और तीखे, किन्तु मृदुल शब्द कान में पड़े। उसने पूछा था—

"कहाँ जा रहे हैं ?"

शुद्ध अंग्रेजी उच्चारण सुनकर मैंने अकचकाकर उसकी ओर देखा, वह तीव्र दृष्टि से मेरी ओर ताक रही थी। वह दृष्टि एक बार बलात् मेरे हृदय में घुस गई। मैं काँप गया— क्यों ? यह नहीं कह सकता। मैंने कुछ शंकित स्वर में कहा— "मेरठ, आप कहाँ जायँगी ?"

मानो मेरा प्रश्न उसने सुना ही नहीं। उसने फिर पूछा— "आप वहीं रहते हैं ?"

अपने प्रश्न का उत्तर न पाना मुझे अच्छा नहीं लगा, पर मैंने संयम से कहा—"नहीं, मैं दिल्ली में रहता हूँ। वहाँ मैं एक मित्र के यहाँ शादी में जा रहा हूँ।"

मैंने देखा, इस उत्तर से उसे कुछ सन्तोष हुआ, और उसके चेहरे का भाव बदल गया। इस बार उसने कोमल तथा विनम्र स्वर में पूछा—"आप दिल्ली में क्या काम करते हैं ?"

"मैं वकील हूँ।"

यह उत्तर सुनकर वह कुछ देर चुप रही, फिर उसने कहा— "क्षमा कीजिए, मैं वकीलों से घृणा करती हूँ, परन्तु आप एक सज्जन आदमी प्रतीत होते हैं।"

उसकी इस दबङ्गता पर मैं हैरान हो गया। पर मैं उसकी बात को बुरा न मान सका। एक प्रकार से उसका रुआब मुझ

पर छा गया, मैंने अत्यन्त नम्रता से पूछा—

"क्षमा कीजिए, यदि हर्ज न हो, तो आप अपना परिचय दीजिए।"

"मेरा परिचय कुछ नहीं, पर आप चाहें, तो मुझे कुछ सहायता दे सकते हैं।"

मैं कुछ सोच ही न सका। मैंने उतावली से कहा—"बहुत खुशी से। मैं यदि कुछ आपकी सहायता कर सका, तो मुझे आनन्द होगा।"

उसने बिना ही भूमिका के कहा—

"मैं एक दिन केवल ठहरना चाहती हूँ।"

मेरे मित्र मेरठ के एक प्रसिद्ध रईस हैं। उनका वहाँ अपना घर है। इस युवती को वहाँ ठहराने में कोई बाधा न थी। मेरे मुँह से निकलना चाहा कि अवश्य, पर मैं सोचने लगा—यह इतनी निर्भीक, तेजस्विनी और अद्‌भुत युवती कौन है? एका-एक मेरे मुँह से कुछ बात न निकली।

वह कुछ देर चुपचाप मेरी तरफ़ देखती रही। कुछ क्षण बाद मैंने पूछा

'परन्तु आपका क्या परिचय?"

उसने रुष्ट होकर कहा—"परिचय कुछ नहीं।"

और वह मुँह फेरकर फिर गाड़ी के बाहर देखने लगी।

न-जाने क्यों मैं अपने आपको धिक्कारने लगा। मैंने सोचा—अनुचित बात कह डाली। मुझे किसी युवती का इस प्रकार परिचय पूछने का क्या अधिकार है, पर एकाएक किसी अपरिचित को मैं किसी के घर में क्या कहकर ठहरा सकता हूँ।

उस युवती का कुछ ऐसा रुआब मेरे ऊपर सवार हुआ कि मैंने अपनी कठिनाई बड़ी ही आधीनता से उसे सुना दी। सुनकर उसने उसी भाँति तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर ताकते हुए स्थिर स्वर से कहा—

"इसमें कठिनाई क्या है ?"

"वे लोग आपका परिचय पूछेंगे।"

"कहिए, बहन हैं, दूर के रिश्ते की हैं, यह भी चली आई हैं। विवाह-समारोह में तो स्त्रियाँ विशेष उत्सुक रहती ही हैं।"

मैं अब अधिक नहीं सोच सका। मैंने कहा—"तब चलिए। वह एक प्रकार से मेरा ही घर है, कुछ हर्ज नहीं। पर अब तो आप बहन हुईं न, अब तो परिचय दीजिये।"

परिचय का नाम सुन कर फिर उसकी त्योरियों में बल पड़ गए, और वह रोष में आ गई। उसने अत्यधिक रूखे स्वर में कहा—"तीन बार तो कह चुकी महाशय, परिचय कुछ नहीं।"

अब मुझे कुछ भी कहने का साहस न हुआ। वह भी नहीं बोली। चुपचाप गाड़ी से ताकती रही। गाजियाबाद आ गया।

मैंने बातें करने के विचार से कहा—"आपको कुछ चाहिए तो नहीं ?"

"नहीं।" उत्तर जैसे संक्षिप्त था, वैसा ही रूखा भी था। ऐसी अद्भुत स्त्री तो देखी नहीं। मैंने सोचा, बड़ा बुरा किया, जो ठहराने का वचन दिया। न-जाने कौन है, पर कोई भी हो, शिक्षिता है, और बुरे विचारों की भी नहीं है। अवश्य कोई कुलीन स्त्री है। कुछ खानगी कारणों से यहाँ आई होगी। अंग्रेजी पढ़ी लिखी लड़कियाँ ऐसी ही उद्धत हो जाती हैं।

मैं यह सोच ही रहा था कि ५-७ आदमी गाड़ी पर चढ़ आए इनमें एक पुलिस का दारोगा भी था। दो खुफ़िया पुलिस के सिपाही थे। दारोग़ा ने युवती की सीट पर बैठकर पूछा—

"आप कहाँ जायँगी ?"

वह बोली नहीं।

दारोग़ा साहब ने साथ के कान्स्टेबिल से कुछ संकेत किया और फिर पूछा—

"आपने सुना नहीं, मैंने आपसे पूछा, आप कहाँ जायँगी ?"

इस बार उसने दारोगा की ओर घूर कर देखा, और शुद्ध अंग्रेजी में कहा—क्या आप टिकिट-चेकर हैं, या रेल के कोई कर्मचारी, आप क्यों पूछते हैं। और किस अधिकार से ? इसके बाद उसने मेरी ओर देख कर कुछ कोप-पूर्ण स्वर में, शुद्ध

हिन्दी-भाषा में, कहा—

"तुम चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे हो, और यह आदमी बिना कारण मुझसे सवाल करता जा रहा है। इस बेशर्म को स्त्रियों से फ़ालतू बातचीत करते जरा भी झिझक नहीं।"

मैं चौंक पड़ा। दारोगा मेरी ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देखने लगा। दो और भी भद्र पुरुष, जो डिब्बे में आ गए थे, वे भी युवती के करारे उत्तर से चमत्कृत हो गए थे। मैंने सम्भल कर कहा—

"यह मेरी बहन है, हम लोग मेरठ एक शादी में जा रहे हैं, आप क्या जानना चाहते हैं? दारोगा एकदम झेंप गया, वह शायद मुझे जानता था। युवती ने एक क्षण मेरी ओर देखा—उसमें होठ काँपे, और फिर वह खिड़की से बाहर ताकने लगी। भद्र पुरुषों ने कहा—"आप चाहे भी जो हों, पर स्त्रियों से ऐसा व्यवहार न करना चाहिए।" दारोगा ने कहा—"आप लोग और वकील साहब और बहन जी भी मुझे क्षमा करें—मैंने बड़ी भूल की। पर मेरा मतलब कुछ और ही था।" मैंने शेर होकर कहा—"आप लोगों का हमेशा और ही मतलब हुआ करता है, पर भले घर की बहन बेटियों की कुछ इज्जत-आबरू होती है जनाब?" दारोगा साहब बहुत ही बिलैया दण्डवत करने लगे। बीच में एक स्टेशन और आया। मैं अभी

तक दारोगा जी को डाँट रहा था। युवती ने साफ शब्दों में कहा—"भाई, जरा पानी ले लो।" मैंने गिलास में पानी लेकर उसे दिया, वह पानी पीकर चुपचाप फिर खिड़की के बाहर मुँह निकालकर बैठ गई।

मेरठ आया, और हम लोग चले। उसके पास कुछ भी सामान न था। वह काले खद्दर की एक साड़ी पहने थी। और एक छोटी सी पोटली और उसके साथ थी। जेवर के नाम उसके बदन पर काँच की चूड़ियाँ तक न थीं। पैरों में जूते भी न थे। वह चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चली आई। मैंने ताँगा किया, और वह पीछे की सीट पर बैठ गई। मैं आगे की सीट पर बैठा, और ताँगा हवा हो गया।

(२)

बहुत चेष्टा करने पर भी मैं उससे उसका नाम पूछने का साहस न कर सका। मैं सोचता था, वहाँ कोई नाम पूछेगा, तो बताऊँगा क्या? पर फिर भी पूछ न सका। मित्र का घर आ गया। और मैंने बहन कह कर युवती को भीतर भिजवा दिया। उसने जाते-जाते कहा—"अवकाश पाकर आप एक घण्टे में मुझ से मिल लें।" मैंने स्वीकृति दी, और वह चली गई।

एक घण्टे बाद मैं भीतर उससे मिलने गया। वह स्नान आदि करके तैयार बैठी थी। मुझे देखते ही कहा—"एक टैक्सी

मेरे वास्ते ला दीजिए, मुझे कहीं जाना है।"

मैंने सोचा, मेरठ-जैसे छोटे से शहर में टैक्सी में कहाँ जाना है। मैंने कुछ दबी जबान से कहा—"तांगे से भी काम चल जायेगा।" उसने रुखाई से कहा—"नहीं, टैक्सी चाहिए।" अजब औरत थी। जरा सी बात मन के विरुद्ध हुई नहीं कि उसके नेत्रों और चेहरे पर रुखाई आई।

मैंने टैक्सी मंगाने को नौकर भेज दिया। अब मेरे मन में एक बात आई, इसे कुछ रु० खर्च को देने चाहिए। पर कहूँ कैसे? जो नाराज हो जाय, तो? इसका जैसा वेश है, उसे देखते से तो दरिद्र मालूम होती है, काफी सामान तक पास नहीं। मैं पशोपेश में पड़ा कुछ सोच ही रहा था—एकाएक उसने कहा—"एक कष्ट आपको और दूँगी।" मैंने समझा, अवश्य यह कुछ रुपया माँगेगी। मैंने जेब से मनीबेग निकालते हुए कहा—"कहिए।" उसने अपने हाथ की पोटली खोली, और एक बन्डल निकाल कर मेरे हाथ में थमा दिया। देखा, यह नोटों का गट्ठर है। सौ-सौ रु० के नोट थे। मैं अवाक् रह गया। उसने सहज स्वभाव से कहा—"पंद्रह हजार रुपए हैं। इन्हें जरा रख लीजिए, कहीं रास्ते में गिर-गिरा पड़ें, कहाँ-कहाँ लिए फिरूँगी।" मेरा तो सिर चकराने लगा। स्त्री है या माया-मूर्ति, कपड़े तक बदन पर काफी नहीं, और

पंद्रह हज़ार रुपए हाथों में लिए फिरती है। और बिना गवाह-प्रमाण मुझ अपरिचित को सौंप रही है, मानो रद्दी अखबारों का गट्ठर है। मैंने कहा—"ठहरिए, रक़म को इस भाँति रखना ठीक नहीं।"

उसने लापरवाही से कहा—"मैं लौट कर ले लूँगी, अभी तो आप रख लीजिए।" जिस लहजे में उसने कहा—मैं अब टाल-टूल न कर सका। काठ की पुतली की भाँति नोटों का बंडल हाथ में लिए विमूढ़ बना खड़ा रहा।

टैक्सी आई, और वह लपककर उसमें बैठ गई। एक क्षीण मुस्किराहट उसके मुख पर आई। उसने कहा—"एक बात के लिए क्षमा कीजिएगा! मैंने रेल में आपको 'तुम' कहा था। आवश्यकता-वश ही यह अनुचित घनिष्ठता का वाक्य निकल गया था" वह मानो और भी जोर से मुस्करा पड़ी, और उसकी सुन्दर मोहक धवल दंत-पंक्ति की एक रेखा आँखों में चौंध लगा गई दूसरे ही क्षण मोटर आँखों से ओझल हो गई।

(३)

तीन दिन बीत गए। न वह आई, न कुछ समाचार मिला। तीनों दिन मैं एकटक उसकी बाट देखता रहा। न सोया, न खाया न कुछ किया। कब बिवाह हुआ और कब क्या हुआ? मुझे कुछ

स्मरण नहीं। मानो हजार बोतलों का नशा सिर पर सवार था। छाती पर नोटों का गट्ठर और आँखों में वह अंतिम हास्य ! बस, उस समय मैं इन्हीं दो चीजों को देख और जान सका। मित्र हैरान थे। पर मैं तो मानो गहरे स्वप्न में मग्न था।

तीसरे दिन एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—

"भाई, मुझे क्षमा करना, अब मैं आपसे नहीं मिल सकती। वे रुपये जो आपको दे आई हूँ, मेरठ-षड्यंत्र-केस में खर्च करने को वहाँ के माननीय अभियुक्तों की राय से उनके वकील को दे दीजिए। मैं इसी काम के लिए मेरठ गई थी—आपसे मिलकर अनायास ही मेरा यह काम हो गया। रु० इस पत्र के पाने के २४ घँटे के भीतर ठिकाने पर पहुँचा दीजिये, वरना जो लोग इसकी निगरानी के लिये नियत हैं, वे इस अवधि के बाद तत्काल आपको गोली मार देंगे। सावधान ? दगा या असावधानी न कीजियेगा। इस पत्र के उत्तर की आवश्यकता नहीं-रुपया ठिकाने पर पहुँचते ही मुझे तत्काल उसका पता लग जायगा।

आपकी

धर्म-बहन

एक बार पत्र पढ़कर मेरा संपूर्ण शरीर काँप उठा, और पत्र हाथ से गिर गया। इसके बाद मैंने झटपट झुककर पत्र को उठा

लिया। भय से इधर-उधर देखा, कोई देख तो नहीं रहा। मेरी आँखों में आँसू भर आए। मैं नहीं जानता, क्यों मैंने पत्र को एक बार चूमा, और फिर आँखों और माथे से लगाया। इसके बाद उसे उसी समय जला दिया। नोटों का बन्डल अभी भी मेरी जेब में था।

(४)

रुपए मैंने किसे दिए, यह जान देकर भी मैं किसी को नहीं बताऊँगा। हाँ, इतना अवश्य कह देता हूँ कि मैं इस काम से निपटकर फिर शीघ्र ही दिल्ली चला आया। पर कई दिन तक कचहरी न जा सका। ऐसा मालूम होता था, मानो शरीर की जान-सी निकल गई हो। एक दिन सन्ध्या-समय मेरे नौकर ने कहा—"कुछ लोग बहुत आवश्यक काम से आपसे भेंट किया चाहते हैं।" बैठक में जाकर देखा, तो वहां दारोगा जी थे। उनके साथ डि० सुपरिंटेंडेंट पुलिस और कई सी० आई० डी० इन्पेक्टर भी थे। देखते ही मेरे देवता कूच कर गए। देखा सारा मकान घेर लिया गया है मैंने जरा रूखे स्वर से पूछा—"कहिए, क्या बात है?"

"दारोगा जी ने थोड़ा हँसकर कहा—"कुछ नहीं, जरा आपकी बहनजी से एक बार मुलाकात करके कुछ पूछना है?"

क्षण भर के लिए मेरे शरीर में खून की गति रुक गई। पर वकीली दिमाग़ ने समय पर काम दिया।

मैंने आश्चर्य प्रदर्शन करके कहा—

"उनसे क्या पूछना है?"

"यह मैं आपको नहीं बता सकता।"

"यह कैसे सम्भव हो सकता है कि आप पर्दनशीन महिला से इस तरह बातचीत कर सकें।"

"बातचीत तो जनाब हो चुकी है, मैं जानता हूँ कि वे पर्दे की क़ायल नहीं।"

मैंने और भी आश्चर्य का भाव चेहरे पर लाकर कहा—"आप कब उनसे बातचीत कर चुके हैं?"

"क्या आप भूल गए—उसी दिन रेल में।"

"मैं नहीं समझता, आप किस दिन की बात कह रहे हैं?"

दारोगाजी जोर से हँस पड़े। उन्होंने डाढ़ी पर हाथ फेर कर कहा—"यह तो अभी मालूम हो जायगा।"

मैंने खूब गुस्से का भाव चेहरे पर लाकर कहा—

"किस तरह?"

"आप कृपा कर ज़रा उन्हें बुला दीजिए।"

मैंने क्षण-भर सोचने का बहाना किया, फिर मैंने नौकर को बुलाकर कहा—"जाओ, ज़रा बीबीजी को तो बुला

लाओ

क्षण-भर ही में रेवती सशरीर सामने आ खड़ी हुई।

दारोगा के काटो तो खून नहीं। मैंने उनकी तरफ़ न देख कर रेवती से पूछा—

"रेवती, कभी तू ने इनसे बातचीत की थी?"

"कभी नहीं?"

दारोगाजी ने घबराकर कहा—"यह नहीं हैं साहब।"

मैंने रेवती को जाने का इशारा करके कहा—

"जनाब, मैं आप पर हतक का दावा करूँगा?" डिप्टी साहब अब तक चुपचाप बैठे थे। बोले—आपके कुल कितनी बहन हैं?"

मैंने कहा—"एक यही है।"

"यह आपके साथ उस दिन मेरठ जा रही थीं?"

यह कल ही कलकत्ते से आई हैं।"

"तब उस दिन आपके साथ कौन थी?"

"किस दिन? मुझे कुछ याद नहीं आता। आप किस दिन की बात कह रहे हैं?"

दारोगाजी बोल उठे—"यह तो अच्छी दिल्लगी है।"

मैंने कहा—"जनाब, दिल्लगी के योग्य मेरा-आपका कोई

रिश्ता नहीं है।"

डिप्टी साहब झल्ला उठे। बोले—"आपके मकान की तलाशी ली जायगी, यह वारंट है।"

मैंने और भी गुस्से, और लाचारी के भाव दिखाकर कहा—"विरोध करना फ़जूल है, आप जो चाहें, सो करें। मैं कानूनी कार्यवाही कर लूँगा।"

६-७ घन्टों तक तलाशी होती रही। पुलिस ने सारा घर छान डाला।

खीझकर डि० सु० साहब बाहर निकल आए। मैंने भी खूब रोष दिखाकर कहा—"जनाब, अब आप ज़रा इस तलाशी पर अपनी रिपोर्ट भी लिख दीजिए।"

डिप्टी साहब मेरी ओर घूरने लगे, पर मैंने बाजी मार ली थी। वही धवल दंत-पंक्ति मेरी आँखों में प्रकाश डालकर हृदय में साहस का संचार कर रही थी। डिप्टी साहब ने कहा "क्या आप उस स्त्री के विषय में कुछ भी नहीं बतावेंगे?"

"किस स्त्री के सम्बंध में?"

"जो उस दिन आपके साथ मेरठ जा रही थी।"

"किस दिन?"

डिप्टी साहब चुपचाप होठ चबाते रहे। दारोगाजी झेंप रहे

थे। बड़बड़ा भी रहे थे डिप्टी साहब ने टोप उठाकर कहा—"बहुत अच्छा, अभी तो जाते हैं। बेहतर था आप सच बात बता देते।"

मैंने ज़ोर से मेज़ पर हाथ पटककर कहा—"कल ही मैं आपसे अपने इस अपमान का जवाब तलब करूँगा।"

डिप्टी साहब चल दिए। मैं भी साथ ही बाहर तक आया सैकड़ों आदमी इकट्ठे हो गए थे। जब पुलिस अपनी लारी में लद गई, तो मैंने पूछा—"आप ईश्वर के लिए यह तो बताइए कि किसे ढूँढ़ते फिरते हैं?"

डिप्टी साहब ने खीझकर कहा—

"मिसेज़ भगवती चरण को।"

अँग्रेज़ प्रभु।

()○○()○

हे अँग्रेज प्रभु! हम आपके हाथ जोड़ते हैं। पैर पकड़ते हैं। देखो नाक रगड़ते हैं। तुम हमें मारना मत। तुम्हारे तो कुछ हाथ न आयगा और हमारी बेचारी जान चली जायगी। जवान बहू, विधवा बेटी, बूढ़ी मा, और निठल्ले भाई अनाथ हो जावेंगे। अच्छा हमें काले पानी भेज दो मंजूर, पिटना भी मंजूर, गाली भी मंजूर, कोल्हू के बैल बनना भी मंजूर, कदन्न खाना और कुत्तों की तरह रहना भी मंजूर। जान तो बचेगी? दुनिया तो दीखेगी? जंगले से ही सही। हैजे में, प्लेग में और अकाल में मरना और बात है इसमें गले में फाँसी तो नहीं लगती? दम तो नहीं घुटता? गोली का जखम तो नहीं होता? धीरे २ नर्म गद्दों पर आराम से प्राण निकल जाता है। पर हाय,

---

* अंग्रेजों पर व्यंग

तुम तो आनन फानन......ना, ना......देखो हम काली गऊ हैं। तुम अँग्रेज बहादुर हो, देखो, तुम्हारी शराब से लाल हुई आँखें कैसी जल रहीं हैं। तुम्हारी वर्दी के बटन कैसे कस रहे हैं। और तुम्हारी मग़रूर मूछें अरर......मूछों की बात–क्या कह गया! वह तो पुराना नमूना था। हाँ, तुम्हारा सफ़ाचट, चश्मा चढ़ा चेहरा कैसा वीर रस पूर्ण है। उस पर बहादुरी खतम है। सचमुच, आप असल अंग्रेज़ बहादुर हैं। पर हज़ूर! आप हमसे डरते किस लिये हैं? हमारा यह भारी डील डौल देख कर? या बड़ी २ मूंछें देख कर? या बड़ी २ स्पीचें सुन कर! अरे! वह कुछ नहीं। आप लोग जैसे पुराने ज़माने के बेडौल हथियारों को और भारी २ ज़िरह बख्तरों को अपने अजायबघरों में कौतुक के लिये सजा कर रखते हैं–उसी तरह हमने यह भारी डील डौल–बड़ी २ मूंछें-सिर्फ प्रदर्शिनी के लिये-आप हुजूरों की दिल्लगी के लिये रख छोड़ी हैं। यह हमारा पुरातत्व विभाग है। समझे आप! और वह जो हम गाल बजाते हैं–उसका मतलब साफ़ है—"गर्जे सो बरसे नहीं" भला हम कहीं आपके सामने मर्द बन सकते हैं? और झगड़ना लड़ना तो बदमाशों का काम है। हम हैं आबरूदार भारी भरकम। दस की सहेंगे, कहेंगे एक भी नहीं। इन हमारे मुसलमान भाइयों से ही पूंछ लो-इन्होंने हमें मारा भी, लूटा भी, धर्म भी बिगाड़ा, आबरू भी ली, बहू बेटियों की इज्ज़त भी लूटी, पर

हमने इन से कभी कुछ कहा ? अजी ये काम बदमाशों के हैं। फिर भी जो तुम्हें मारना ही है तो लात घूंसा, जूता ठोकर चाहे जो कुछ मारो पर हे माई बाप ! हे खुदा बन्द ! जान तो जुरूर बख्स दो।



ज़ार की अन्त्येष्टि *

()○○()○

आज लगभग ४० वर्ष से एशिया और योरोप में नवीन संघर्ष चल रहा है। इससे प्रथम एशिया भक्ष्य और योरोप भक्षक था। जिस समय भारत को अंग्रेजों ने पादाक्रांत किया, उस समय एशिया के सभी मुस्लिम देश अरब, तुर्किस्तान, ईरान, अफ़गानिस्तान आदि जो दक्षिण पश्चिम में फैले हुए हैं, निर्बल और अराजक थे। पूर्व की ओर के बौद्ध राष्ट्र—चीन, जापान, स्याम आदि प्रसुप्तावस्था में थे। दक्षिण की ओर के छोटे २ देश और द्वीप फ्रांसीसी, डच और स्पेनिश लोगों ने हड़प लिये थे। उत्तर में उजाड़ साइबेरिया देश था, जो रूस का काला पानी था। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेज़ों ने अपने साम्राज्य के कांजी-हाउस में भारत रूपी दुधार गाय को बांध कर मज़े में दूध

---

* यह कहानी सन् १९१७ के लगभग रूस की क्रान्ति पर लिखी गई थी।

पीना शुरू किया। उस समय अंग्रेजों को यह धारणा नहीं थी कि यह सीधी सादी गाय एशियाटिक राष्ट्रों के हरे भरे चरागाहों में चरने के लिये कान पूँछ हिलायेगी। इस परिस्थिति में उत्तर की ओर से दक्षिण की ओर पाँव फैलाने वाला रूस और दक्षिण की ओर अपना सिर ऊँचा उठाने वाला इंगलैंड, दोनों पहले पहल प्रति स्पर्द्धी हुए। इसके बाद चीन और जापान का युद्ध हुआ। योरोपियन युद्ध कला की सहायता से जापान विजयी हुआ, जिस से पूर्वी एशिया में एक हलचल उत्पन्न हो गई। और योरोप को यह भय होने लगा कि अगर एशियाई राष्ट्र योरोपियन युद्धकला सीख लेंगे, तो जन संख्या के बल से वे योरोपियन राष्ट्रों को तहस नहस कर डालेंगे। इसके दस ही वर्ष बाद जापान ने रूस को पछाड़ कर इस भय को सत्य कर दिया। योरोप को मालूम होने लगा कि एशिया के पूर्व में सूर्योदय हो गया है। जापान की इस विजय से "गोरे राष्ट्र अजेय हैं?" यह गर्व चकनाचूर हो गया। एशिया में हलचल मच गई। जापान खम ठोक कर योरोपियन राष्ट्रों की पंक्ति में जा बैठा। स्याम अपना घर सुधारने लगा। ईरान में शाह और जनता के बीच बखेड़े शुद्ध हो गये। टर्की में तरुण संघ स्थापित हो गया। इसके दस वर्ष बाद योरोपीय महायुद्ध आ धमका।

पृथ्वी के नक़शे की ओर अगर हम देखें तो प्रतीत होगा कि

एशिया और योरोप मिलकर २० पश्चिम रेखांश से पूर्व की ओर १६० रेखांश तक यानी २१० रेखांश लम्बाई का, और दक्षिणोत्तर भूमध्य रेखांश से उत्तर की ओर ७० अक्षांश चौड़ाई का एक प्रचण्ड भूमिखंड दिखाई पड़ता है। वास्तव में योरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के समान कोई अलग भूखण्ड नहीं, प्रत्युत एशिया ही का पश्चिम की ओर बढ़ा हुआ एक खंड है। जिस प्रकार एशिया के दक्षिण में अरब, भारत और मलाया समुद्र में घुसे हुए प्राय द्वीप हैं, वैसे ही पश्चिम की ओर योरोप भी प्रायद्वीप है। एशिया, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका, इन भूखण्डों में बहुत प्राचीन काल से मनुष्य की आबादी का पता चलता है। परन्तु योरोप की आबादी २½-३ हजार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। उसका रकबा भी एशिया के एक मामूली देश के बराबर है, परन्तु वह जल प्रलय, भूडोल और ज्वालामुखी आदि भौतिक उत्पातों से बना और एशिया से पश्चिम की ओर गये हुए आर्य और तूरानी आक्रमणकारियों से बसा हुआ है। इससे पूर्वीय भूखंड में इतनी विचित्रता, इतनी उधेड़ बुन और इतनी गड़बड़ बनी रही है कि संसार के इतिहास में १० में से ६ पृष्ठ इन्हीं से भर गये हैं। इस विचित्र देश के छोटे २ राष्ट्रों में पृथ्वी भर के मनुष्यों के अधिभौतिक और आध्यात्मिक जीवन को पल-

दिया है। लोगों को मालूम होने लगा कि हिंद महासागर के बहुत से द्वीप अंग्रेजों के अधिकार में आ गये और वहाँ पर इन्होंने बहुत बड़े २ कारखाने और खेती बाड़ी फैला दी है।। आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड भी अंग्रेजों के डोमिनियन्स हैं जर्मनी को पेट भरने के लिये कोई गुंजाइश नहीं रह गई थी। परिणाम यह हुआ कि महायुद्ध का सूत्रपात हुआ। इस महायुद्ध ने योरोपियन राष्ट्र के संघ को एक दम खोखला कर दिया। चूंकि इस युद्ध में इंगलैंड और फ्रांस को एशिया से बहुत कुछ मदद मिलती थी, इसलिये उनसे मदद ली गई। और एशियाटिक लोग योरोपियन लोगों से कंधे से कंधा मिला कर लड़े। इसका परिणाम यह हुआ कि लीग आफ् नेशन्स में एशिया के राष्ट्रों की कुर्सी योरोप के राष्ट्रों की कुर्सी के बराबर रख दी गई। इस प्रकार चीन जापान युद्ध और रूस जापान युद्ध तथा योरोपियन महायुद्ध, इन तीन सीढ़ियों पर चढ़ कर एशिया योरुप का मित्र बन बैठा और योरोपियन राष्ट्रों की बराबरी करने लगा।

इससे एशिया खंड में नया युग शुरू हो गया। चूंकि योरुप के बड़े २ राष्ट्र लड़कर कमजोर और छोटे छोटे राष्ट्र आवारागर्द हो गये थे, इसलिये एशिया के नव जाग्रत लोगों

को सुगठित होने का बहुत मौका मिला। योरोप के राष्ट्र अंतर्कलह में लगे हुये थे। इंगलैंड ने सोवियट रूस के लिये योरोप के फाटक बंद कर दिये थे। इस पर रशियन कम्युनिस्ट लोगों ने भारतवर्ष और चीन में अंग्रेजों के विरुद्ध बलवे उभारने शुरू कर दिये। इंगलैंड और फ्रांस ने जर्मन की जल सेना के हाथ पाँव काट डाले, तो जर्मन ने अपने हवाई जहाजों से आकाश को पाट दिया। अब रूस और जर्मन ने सलाह करके ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देने का इरादा कर लिया। जर्मनी अपने कर्ज के विषय में और सोवियट रूस ने अपने युक्त व्यापार के लिये तकाजे कर करके इङ्गलैंड, फ्रांस और इटली इन तीनों दोस्तों के बीच में कलह की चिनगारी छोड़ दी। इस महायुद्ध से जर्मन के सभी उपनिवेश छिन गये, इसलिये व्यापार के सिवा उसका कोई ध्येय नहीं रह गया। मुल्क फतह करने का पुराना ढर्रा मालूम होता है, हमेशा के लिये गया। जिस प्रकार बवंडर से वायु शुद्ध होती है, उसी प्रकार उस महायुद्ध ने योरप और एशिया को सम संयोग का रास्ता दिखा दिया है।

बिल्कुल ही निराली है। रूस लगभग तीन चौथाई एशिया

में है, इसलिए रूस के नवीन राष्ट्र ने अपने को एशियाई घोषित करके योरप को चकित कर दिया है। इस वक्त आधे से अधिक एशिया का खण्ड रूस के अधिकार में है। जार के जमाने में रूस की हालत बहुत बिगड़ी हुई थी। रूस का तमाम प्रांत उजाड़, दरिद्र और अराजक था। परन्तु बोल्शेविक क्रान्ति ने रूस में एक ऐसा नवीन जीवन कर दिया जिससे योरुप के सारे राष्ट्र थर्रा उठे। और उन्होंने अपने अद्भुत कार्य तथा शक्ति से लोगों को दिन प्रति दिन चकित करना शुरू कर दिया। वे लोग ईरान, अफगानिस्तान, भारत, चीन और तिब्बत में अपने हाथ पाँव फैला रहे हैं। उन्होंने अपनी रेलों का छोर पैसेफिक महासागर तक ला पहुँचाया। वे दक्षिण की ओर अफगानिस्तान और ईरान के किनारे २ हिन्द महासागर के किसी बन्दरगाह तक पहुँचने की तैयारी कर रहे हैं। सबसे बड़ी बात जो रूस में की है, वह धार्मिक सत्ता को राजनीति से दूर कर देने की है। अगर गौर से देखा जाय तो रूस की राज्यक्रांति एशिया के लिये एक अमर वरदान है।

(२)

भयानक सर्दी थी। सब तरफ बरफ ही बरफ नजर आती थी। मास्को से १०० मील दूर एक गाँव के किनारे सशस्त्र सैनिकों से घिरा हुआ एक दल आया, और चुपचाप खड़ा हो गया।

चाँदनी रात थी और उस मीलों लम्बे चौड़े मैदान में सफ़ेद बर्फ़ चमक रही थी। लम्बे और ऊँचे ऊँचे वृक्ष काले काले बड़े सुहावने प्रतीत होते थे। कुल कैदियों की संख्या २०० थी। और जो सेना उन्हें घेरे हुए थी, वह अनुमानतः १००० होगी। सेना का अधिपति एक पुराना जेनरल था। वह बूढ़ा आदमी था। वह रोबीला चेहरा लिये, अकड़ा हुआ घोड़े पर सवार था। उसने अपने चमड़े के दस्ताने पहने हुए हाथों से घोड़े की रास खींची, और सेना को पंक्तिबद्ध होकर खड़े होने की आज्ञा दी। प्रत्येक सैनिक पत्थर की मूर्ति के समान अचल था। उनकी बन्दूकों के कुन्दे चाँदनी में चमचमा रहे थे। सेना नायक ने सैनिकों को व्यूह बद्ध करने के बाद कैदियों को एक दोहरी पंक्ति में खड़े होने की आज्ञा दी। कैदी भी सैनिक थे और वे सैनिक वर्दियां पहने हुये थे सेना नायक ने कड़क कर आज्ञा दी "तुम लोगों को बोलशेविक होने के अपराध में अभी गोली मार दी जायगी" प्रत्येक व्यक्ति निश्चल था। सेनापति की आज्ञा का किसी ने विरोध नहीं किया। सेनापति की दूसरी आज्ञा थी, 'अपने अपने पैरों के पास अपनी २ कबरें खोद लो। "कैदियों ने कन्धों से कुदालियाँ उतार कर गड्ढे खोदने शुरू कर दिये। सैनिक चुपचाप यह सब दृश्य देख रहे थे। उस भयानक सर्दी में

इतना कठिन परिश्रम करने से कैदियों के माथे से पसीना बह चला। जब कुल कब्रें खुद चुकीं तो सेनापति ने हुक्म दिया, "हर कोई अपनी २ वर्दियाँ उतार कर रख दे। क्योंकि वह सरकारी सिपाहियों के काम आवेंगी। गोली लगने से उनमें छेद हो जाने से उनके खराब होने का डर है।" कैदियों ने चुपचाप अपनी वर्दियाँ उतार कर रख दीं। उनके सफ़ेद शरीर शीशे के माफिक दमकने लगे। वे काँप रहे थे, किन्तु भय से नहीं, शीत से। सेनापति ने क्षण भर उनका निरीक्षण किया और हुक्म दिया "तुम लोगों में जो बोल्शेविक सिपाही न हो वह इस पँक्ति से हट कर अपने घर चला जा सकता है। उसे मैं स्वतन्त्र करता हूँ।" कैदियों ने अपने आस पास खड़े हुए मित्रों और बन्धुओं को नीरव दृष्टि से देखा। उनमें से बहुत से पिता पुत्र, चचा भतीजे और सगे सम्बन्धी थे। इसके बाद उन्होंने सामने सोते हुए गाँव की ओर दृष्टि डाली, जहाँ उनकी प्यारी पत्नियाँ और बच्चे सो रहे थे और यह नहीं जानते थे कि उनके पतियों पर क्या बीत रही है फिर उनकी दृष्टि मीलों लहराते खेतों पर दौड़ी गई। जिनको उन्होंने जोता और बोया था, और जो अब पक कर खड़े थे। उनकी दृष्टि सब ओर दौड़ कर फिर एक दूसरे को देखने लगी, और ज़मीन में झुक गई। सेनापति ने फिर पुकारा-"क्या तुममें कोई ऐसा है जो

बोल्शेविक नहीं है ?" कैदियों ने एक स्वर होकर जवाब दिया "हम सब बोल्शेविक हैं।" जेनरल पूरी ऊँचाई से अपने घोड़े पर तनक कर बैठ गया। उसने उन खुदी हुई कबरों को, कैदियों के नंगे शरीरों को और फिर उस सन्नाटे की रात को एक बार आँख भरके देखा। उसके बाद उसकी दृष्टि अपने सैनिकों की ओर घूमी। उसने सैनिकों को संकेत किया। सैकड़ों बन्दूकें गर्ज उठीं। उस चाँदनी रात में उस भयानक शीत में खड़े हुए वे २०० नरवर जिनके शरीर से खून के फव्वारे बहने लगे थे, अपनी खोदी हुई कबरों में झुक गए। सेनापति की आज्ञा से सेना ने आगे बढ़ कर उन्हें ठोकर मार कर कबरों में ढकेल दिया और जल्दी २ उन पर मिट्टी डाल दी गई। उनमें से बहुत से लोग अभी जीवित थे और जीवित ही जमीन में दफन कर दिये गये थे।

(३)

इसके कुछ ही दिन बाद तख़्ता उलट चुका था। पिट्रोग्रेड से २००० मील दूर साईबेरिया प्रदेश में टोबोलस्क में २२ अप्रैल १९२२ को लगभग १० बजे दिन को एक अद्भुत और वीर सरदार धीरे २ घुसा। उसके साथ १५० चुने हुए घुड़सवार थे। नगर वासियों ने देख कर परस्पर संकेत में बातें कीं पर "कौन और क्यों ?" इसका हाल कोई नहीं जानता था।

सवारों का यह दल सीधा नगर के प्रांत भाग में स्थित एक पुराने और विशाल मकान के खंडहरों में घुस गया। सभी जानते थे, उस मकान में कुछ राजनैतिक अपराधी एक वर्ष से कैद हैं। परन्तु थोड़ी ही देर में नगर वासियों ने आश्चर्य से देखा, खुद जार और उसका परिवार बंदी की भाँति उन सवारों से घिरा हुआ उस मकान से बाहर निकल और इकटेरिंबर्ग गाँव की ओर चल दिया।

४

सरदार का नाम वेसली-बीच-जेल्कोलिन था। वह सोवियट सरकार का प्रमाणिक व्यक्ति था। ज़ार कहाँ है, कैसा है, इस के विषय में कोई नहीं जानता था। वह एक वर्ष से गुप्त कैद था। उस गुप्त कैद से निकाल कर बेकोलिन ने उस गाँव में रख दिया। यह गाँव सोवियट दल का प्रधान अड्डा था। ज़ार इस गाँव के एक साधारण मकान में अपने परिवार तथा अन्य मनुष्यों सहित कैदी की तरह रहने लगे। इस पर ज्यूरो-बल्की का पहरा था।

२५ जुलाई की आधी रात का समय था। २ बजे ज्यूरोबस्की आया और उसने जार के दरवाजे को खटखटाया। द्वार खुलने पर उसने ज़ार को कपड़े पहन लेने का हुक्म दिया। इसके बाद ज़ार तत्काल एक तहखाने में ले जाये गये। उनकी स्त्री

बच्चे भी बुला लिये गये। उस कमरे में कुल ११ मनुष्य हो गये। ज़ार, ज़रीना, तेरह वर्ष का रोगी पुत्र, चार पुत्रियाँ, एक गृह चिकित्सक, दासी, रसोइया और नौकर। ग्यारहों मनुष्यों के पीछे ज्यूरोवस्की था और उसके पीछे बारह आदमी और थे। सभी चुप थे। ज्यूरोबस्की ने इन आदमियों के दो दल करके अपने सामने खड़ा कर दिया। राजा, रानी और राजकुमारों के लिये कुर्सियाँ मगवाई गईं। खिड़कियों से पहरेदार लोग भयभीत मुद्रा से जो कुछ होने वाला था, उसे देख रहे थे।

ज्यूरोबस्की ने कुछ भी शिष्टाचार न करके अपना ओटो-मेटिक पिस्तौल बाहर निकाला और ज़ार को निशाना बना कर दन से चला दिया। क्षण भर में ही जार मर कर जमीन में लुढ़क गये। इसके दूसरे ही क्षण बारह पिस्तौलों ने एक दम अग्नि ज्वाला उगल दी। सभी बंदी क्षण भर में मार डाले गये। कमरे में पिस्तौलों की प्रलय गर्जना और मरते हुओं की चीत्कार के बाद सन्नाटा छा गया। स्थान धुऐं से भर गया। यह हृदय विदारक और भयानक दृश्य देख कर सिपाही भी भयभीत हो गये। ज़ार का छोटा पुत्र एलेक्स अपने माता पिता के मृत शरीर पर गिर कर फूट २ कर रोने लगा। ज्यूरोबस्की ने तत्काल उसे दूर हटाया और गोली मार दी। गोली खाकर भी वह मरा नहीं, सिसकने लगा। ज्यूरोबस्की ने एक सिपाही को संकेत किया। उसने भारी भारी पैर आगे

बढ़ाये और अपनी संगीन उसके कोमल सीने में भोंक दी।

उस कमरे की दीवारें रक्त और मांस के छीछड़ों से भर गई थी। प्रातःकाल चद्दरें लाई गईं। उनमें मुर्दे लपेटे गये और बाहर खड़ी हुई मोटर लारी में डाल दिये गये। ये मुर्दे जंगल में ले जाये गये। वहाँ उन्हें जला दिया गया जिससे उनके प्रेत का भी अस्तित्व न रहे।

इस प्रकार शताब्दियों का अत्याचारी सम्राट अनंत में मिल गया और जनता ने उसे खून नहीं जन कल्याण के साधक यज्ञ की आहुति बनाया।



कहाँ जाते हो ?★

अनन्त सागर के उठते हुए भीषण ज्वार में, हमारी पुरानी नाव को अरक्षित छोड़ कर कहाँ जाते हो ? इस प्रलय तूफ़ान में, इस अन्ध निशा में, इस तीव्र गर्जन में, इन उत्तुंङ्ग तरङ्गों में, हम असहाय तुच्छ नाविक कब तक ठहर सकेंगे ? किधर जावेंगे।

मोहन ! मोहन ! ठहरो। हाय ! तुम हँसते हो ? तुम्हें अपनी विपत्तियों से खेलने का, परिहास करने का अभ्यास हो तो तुम खेलो, परिहास करो-परन्तु हमारी विपत्ति साधारण विपत्ति नहीं है, हमारी जान का मोल है—हमारी आबरू का पानी है--तुम इस समय हँसो मत, निर्मोही न बनो, हमें यहाँ लाकर मत छोड़ो, न हो तो हमें पार लगाकर चले जाना, उत्तर या दक्षिण जहाँ तुम्हारा जी चाहे।

❀ ये पंक्तियाँ गान्धी जी की ६ वर्ष जेलयात्रा के समय सन् २१ में लिखी गई थी।

और एक बार तुम आये थे, यही तुम्हारा ध्रुव श्याम रूप था, यही तुम्हारा चिनिन्दित अभ्यास्त हास्य था, यही अक्षुण्ण मस्ती थी। इसी तरह तुमने तब भी भारत के नर नारी को मोह लिया था, कृष्णा जमुना इसकी साक्षी है---एक बार समस्त विश्व के साम्राज्य, पृथ्वी भर के राज मुकुट तुम्हारी उँगली के संकेत पर--तुम्हारी भृकुटी के विलास पर--तुम्हारी हुंकार की ताल पर मृत्यु के पथ पर नाच चुके हैं---उस समय भी तुमने शस्त्र ग्रहण न करने की शपथ ली थी। और उस समय भी तुम हमें मझधार में ही छोड़ भागे थे।

धर्म की संस्थापना का, दुष्कृतों के विनाश का क्या वास्तव में और कोई मार्ग ही नहीं है? क्या प्रभु को बलिदान हुए बिना यह कार्य नहीं हो सकता है?

ना। इस बार हम तुम्हें इस तरह न जाने देंगे। हम अपनी आत्माओं की शपथ खाकर कहते हैं कि तुम इस बार चुप चाप न जाने पाओगे। स्याह और सफेद करना ही होगा। इन्हीं हाथों से, इसी बार, हम बार २ तुम्हें कहाँ पावेंगे?

वह नव विधवाओं के अविकसित, किन्तु मलीन मुखों पर कभी न रुकने वाले आँसुओं की भरी आँखें देखो, क्या तुम इसे ओस से भरे हुए गुलाब की शोभा समझते हो वह—जीवन की अन्तिम घड़ियों में—गोद से बल्कि संसार से उठा दिये गये

निरपराध बच्चों की माताओं की कम्पित गम्भीर निश्वास की ध्वनि सुनो--क्या तुम उसे अपनी बाँसुरी की प्रतिध्वनि समझते हो? वह कारागार की मनहूस दीवारों के पीछे आश्चर्य कारक भीड़ की आश्चय कारक उत्तेजित दिन चर्या देखो--इसे क्या तुम अपने राजसूय के उत्सव की भीड़ समझते हो? और सब के पीछे---हमारा खून से भीगा पल्ला देखो, हमारी बहन बेटियों का धूल भरा आँचल देखो--हमारा अनन्त उन्माद देखो? क्या तुम इसे अपने फाग का रस रंग समझते हो?

अच्छा अब हँसो, देखूँ तुम कैसा हँसते हो। हाय! निष्ठुर तुम अब भी हँसते हो।

कुछ भी समझ में नहीं आता, वासना से परे तुम्हारा लक्ष्य है। वर्तमान से परे तुम्हारा जीवन है। जीवन के परे तुम्हारा उद्देश्य है, मृत्यु से परे तुम्हारा प्रभाव है।

चेष्टा व्यर्थ है। हम तुम्हें कभी न समझ सकेंगे? तो हम तुम्हारा अनुगमन ही करें? तुम्हारे पाद चिन्हों पर चलें? इस अनी की चोट पर, इस भीषण ज्वार में इस प्रलय के तूफान में-हम-दुर्बल-असहाय, अज्ञान प्राणी—अपनी आपदा, अपमान, नाश और संकट की परवा न करके—केवल तुम हँसते हो इसलिए हँसें? तुम सहते हो—इसलिये सहें? अच्छी बात है। हे आत्मा के अमर पुरुष! हे कर्म के अखण्ड तेज-

पुञ्ज ! तो, हम हँसेंगे, सहेंगे। चाहे जैसा हो, चाहे जो हो—हम हँसेंगे—हम सहेंगे। हे आनन्दी बन्दी। तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो उन के बन्धन में बंधो—पर देखना हमारे बन्धन से मुक्त न हो जाना। हम तुम्हें छोड़ेंगे नहीं, चलो हे कारागार के अवतार ! हम सब वहीं तुम्हारे पास आते हैं !!



मा ! रोना मत !!!*

उन मनहूस भीमकाय दीवारों के भीतर तुम्हारा नाजों का पाला हुआ लाल, ज्येष्ट की तपती दोपहरी में पत्थर की गिट्टियाँ फोड़ रहा है। शरीर से पसीनों का पनाला बह रहा है और दर्द के मारे उसका शिर फटा जाता है। उसके हाथ अनभ्यस्त होने के कारण इतना काम करके लोहू लुहान हो गये हैं। वह हाँफ रहा है तमतमा रहा है। क्षण २ में उसकी बेड़ियाँ जो धूप में तप कर लाल हो गई हैं—पैरों को चहकाती हैं जिस से वह धीरज से एक आसन पर बैठ कर अपना काम नहीं कर सकता।

उससे कुछ दूर पर तुम्हारे उस लाल के वृद्ध पूज्य पिता, वे तुम्हारे देवता—जो आधी शताब्दि तक कानून के प्रकाण्ड विद्वान गिने गए थे, दीवार की उड़ती हुई छाया में धूल में बैठे

* ये पंक्तियाँ श्री जवाहरलाल नेहरू की प्रथम जेलयात्रा पर सन् २२ या २३ में लिखी गई थीं।

एक मन से चक्की पीस रहे हैं, मैदान की मैली धूल और आटे ने उड़कर उनके महान् सिर और मर्दानी उज्ज्वल मूछों को धूल में मिला दिया है !!

इन्हें देख कर—मेरी अच्छी मा ! तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ—तुम रोना मत ! तुम इस युद्ध प्रसंग पर इस अनी की चोट पर, आँसू बहा कर हमें कायर न बना देना, कहीं हमारी आँखों में आँसू न आ जायं। हजारों वर्ष में आज हमारी आँखों में यह आग जली है—जो तुम्हारे आँसू देख कर वह बुझ गई—तो सर्वनाश हो जायगा। तुम भीतर जाकर बैठो, हमें जूझ लेने दो—यह हमारी आनकी बाजी है—इस आन पर हमने सदा मान और जान की बलि दी है—उसी आन की शान पर आज तुम्हारे लाल और देव जूझ रहे हैं—तुम इस दृष्य को मत देखो इसे मैं देखूँगा—सारे भारत के वीर नर देखेंगे। और फिर समस्त संसार देखेगा।

तुमने इसे मा ! विलायत भेजा था ? सभ्यता और शिक्षा से छक आने के लिये। पर वह मात्रा से अधिक छक गया—स्वाद कभी संयम नहीं रहने देता—उठते ही दिनों में इसे उस सभ्यता और शिक्षा का अजीर्ण हो गया। तुमने रुपया उसके पैरों में बिछाया—पर वह कठोरता त्याग कर फूल न बन सका। मा ! यह तुम्हारी छोटी भूलें थी—पर सबसे बड़ी भूल एक और थी,

किसलिये तुमने आर्य रमणी होकर उसे आर्य शिक्षा और आर्य नीति से दूर करना चाहा था? किसलिये भूखे भाइयों में उसे श्रीमन्ताई का ताज पहनाया था? किसलिये गुलाम देश में मरने वाले को स्वाधीन देशों की हवा खाने दी थी? यह सब किया था–तो यह काँटा क्यों रहने दिया कि वह हिन्दू है और हिन्दुस्तानी है। इसी ने गज़ब किया! उसी हिन्दू और हिन्दुस्तानी पने के नाम पर आज वह योद्धा बना है! उसी हिन्दुत्व और हिन्दुस्तानी पने के नाम पर वह जूझ रहा है। आर्य मा का दूध पीकर यह कब सम्भव था कि जब करोड़ों आत्माएँ अपमान से अवनत पड़ी थीं—वह यौवन के रस रहस्य में मस्त रहता? लाखों भाइयों को भूखा और नंगा–तथा अनाथ देख कर–पैरिस के धुले कपड़े पहनता और तुम्हारे षडरस व्यंजन करता? यह उसकी ग़ैरत का, उसकी मर्यादा का, उसकी कुलीनता का प्रश्न था–कि वह श्रीमन्ताई के मुकुट पर लात मार कर, भोग विलासों से घृणा करके—उसी आर्यत्व के नाम पर सच्चे योद्धा की तरह मोर्चे का अग्रभाग लेकर लाखों विमूढ़ आत्माओं को मर्द बनने का मार्ग दिखावे;

जिस सभ्यता पर तुमने मा होकर उसे ढकेला था उसी ने उसे असभ्य पशुओं की तरह बाँध रखा है। इस पर चकित मत होना, वह वास्तव में पराई सभ्यता थी वह नहीं

चाहती कि कोई उसका उपासक हिन्दुत्व या हिन्दुस्तानी पने को प्यार करे क्योंकि ये दोनों वस्तु उसकी बेध लक्ष्य हैं–इन्हीं दोनों के शिकार को वे यहाँ आई हैं।

यह मत समझना–तुम्हारा लाल विपत्ति में है–यह विपत्ति नहीं है कष्ट है–विपत्तियाँ अभागों पर पड़ती हैं–परन्तु कष्ट प्रत्येक कर्मठ पुरुष के मार्ग में आते हैं–जो कर्त्तव्य के गम्भीर सागर में मान का मोती पाने की हौंस में कष्ट की पर्वताकार तरंगों पर पदाघात करते हुये ऊँची छाती करके समुद्र के घोर गर्जन की ताल पर समुद्र की गम्भीर छाती को चीर कर अग्रसर होते हैं–वीर नर वही हैं--तुम्हारा लाल यदि ऐसा न होता तो तुम्हारे लिये लज्जा की बात थी। वह देखो उन कष्टों से खिलवाड़ करता हुआ वह सुन्दर युवा किस मस्ती से गा रहा है—

हो! हो! यह क्या? देखो वे वृद्ध पुरुष अपनी अवस्था का कुछ भी ख़्याल न करके--अपने पुत्र के गान को सुन कर--अपनी चक्की छोड़ उन्मत्त की तरह नाच रहे हैं। प्रेम और गर्व से उनका महान् मस्तक अनन्त आकाश की ओर उठ गया है। देखो वह भगवान् से कुछ कह रहे हैं। मगर हैं! यह क्या? उस पिशाच मूर्ति--सिपाही ने अपने विशाल लठ को ऊँचा उठाकर क्रोध से दाँत पीसकर--विकट स्वर में क्या कहा? उन्हें फटकार दिया? हाँ उन्हीं को--

जिनकी जज भी टेक रखते थे, लाट साहेब की कौंसिल में जब वे स्पीच देने खड़े होते थे--तब भी उन्हें कोई नहीं बैठा सकता था—पर इस तुच्छ चपरासी ने उन्हें फिर चक्की पर लगा दिया ? मा ! मा ! तुम मुँह छिपाकर क्यों बैठ गईं ? अरे ! तुम फिर रोने लगीं ? बस यही बुरा है। देखो—आत्मा में बल आ रहा है। जूझ मरने के हौंसले मन में उठ रहे हैं, धरती पर से ऊपर उठा जा रहा हूँ। मा ! तुम रोकर मेरे मन को मिट्टी मत करो। मैं बह जाऊँगा, मेरा अचल निश्चय बह जायगा—मैं सब सह सकता हूँ—मा का रोना नहीं सह सकता।

क्या देवी की ज्वाला तुम्हारे नेत्रों में नहीं है ? इन आँसुओं को सुखा डालो, जला डालो, फूँक डालो, आग जलाओ—जल्दी, अभी। मुझे आँसू नहीं भाते। मुझे क्रोध आगया है। इधर देखो—भरे हुए नेत्रों से नहीं, ज्वालामय नेत्रों से, जैसे जल से भरे हुये काले बादलों के बीच ध्वंसिनी बिजली छिपी रहती है—उसी तरह तुम्हारी भृकुटी में सच्चे क्रोध की लौ होन चाहिये। उसी बिजली का एक प्रहार मेरे ऊपर करो—जैसे इन्द्री वज्र का प्रहार करता है। उसी एक प्रहार में मेरे तन मन की कायरता को जलाओ। हमारे मिथ्या संकल्प विकल्पों को जलाओ। हमारे द्वेषपाप और हिंसा को जलाओ। मा ! रोने में समय और आबरू मत खराब करो।

बस फिर तुम घर में जाकर बैठो। जो होगा सो देख लेना—तुम्हारा लाल भी देख लेगा—तुम्हारे देव पुरुष भी देख लेंगे—समस्त आर्य वर्त और समस्त पृथ्वी की जातियाँ भी देख लेंगी। पर मा! तुम रोओ मत।

I think that this is the best story of the book.

भाई की विदाई*

नायक छत पर खड़ा था। उसके एक हाथ में सर्च लाइट और दूसरे में भरा हुआ रिवालवर था। दो और रिवालवर उसकी जेबों में थे। वह प्रत्येक डाकू की गति-विधि का निरीक्षण कर रहा था और साहसिक शब्दों में अंग्रेजी में प्रत्येक को आज्ञा दे रहा था। द्वार पर दो डाकू बन्दूक ऊँची किये मुस्तैद खड़े थे। गृहपति और गृहणी बीच आँगन में चारपाई पर चुप चाप बैठे थे। उनके सिर पर पिस्तौल ताने एक डाकू खड़ा था। चार डाकू घर में से माल-ला ला कर गट्ठड़ बाँध-बाँध कर आँगन में ढेर कर रहे थे। सब काम चुपचाप हो रहा था बीच-बीच में बाहर के प्रहरियों की सांकेतिक सीटी, नायक अस्फुट आज्ञा और साँप की भाँति लहराती उज्ज्वल सर्च लाइट की रोशनी-बस इसी का अस्तित्व था। रात खूब अँधेरी थी।

घर के एक कोने से किसी बालिका के चीत्कार की ध्वनि आई और बन्द हो गई। नायक ने सांकेतिक भाषा में पूछा

---

* एक सत्य घटना के आधार पर—

क्या है ? और उसे कुछ भी उत्तर न मिला। वह एकदम आँगन में कूद पड़ा। गृहपति से पूछा "यह चिल्लाया कौन ?" गृहणी ने मर्माहत भाषा में कहा—"मेरी लड़की, वह अपने कमरे में छिपी थी। तुम लोगों के डर से हमने उसे छिपा दिया था। कोई पापी उसे सता रहा है हाय, तुम्हें भगवान् का भी भय नहीं ?" गृहणी ने हृदयविदीर्ण करने वाली हाय की।

नायक बिजली की भाँति लपक कर वहाँ पहुँचा। देखा एक किशोरी बालिका धरती पर बद-हवास पड़ी है ! उसके मुँह में कपड़ा ठुँसा है और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे हैं ! एक डाकू उसके साथ पाशविक कर्म किया चाहता है ! बालिका इस अवस्था में भी छटपटा रही है !

डाकू के सावधान होने से प्रथम ही नायक की गोली ने उसकी खोपड़ी को चकनाचूर कर दिया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ! उसने बालिका के मुँह से वस्त्र खोला और सहारा देकर खड़ा किया ! गोली चलने और एक आदमी की खोपड़ी चूर-चूर होने तथा अपने ऊपर भयानक आक्रमण से बालिका विमूढ़ हो रही थी ! वह थर थर काँप रही और उसकी दृष्टि ज़मीन पर झुकी थी ! वह रो भी न सकती थी नायक ने धीरे से घुटने के बल बैठ कर बालिका से करुण कोमल स्वर में कहा— "बहिन, इस पतित पापी को क्षमा कर दो, यह दुष्ट अब तो पूरा दण्ड पा चुका ?" बालिका ने साहस करके नायक की

ओर देखा, वह कुछ देर स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखती रही। अभी भी नायक के हाथ में पिस्तौल थी। नायक घुटने के बल सिर झुकाये खड़ा—"बहिन क्षमा, बहिन क्षमा, शब्द बार-बार कह रहा था। बालिका साहसपूर्वक नायक के पास आई और उसका नकाब पकड़ कर खींच लिया। तप्त अंगार के समान नायक का मुख, नाम मात्र की रेखा के समान उस की मूंछें और आँसू से छल-छलाती हुई बड़ी-बड़ी आँखें, अनुनय के लिए फड़कते हुए होंठ, यह देख कर बालिका स्त-म्भित रह गई। उसने रोना चाहा पर रो न सकी क्रोध करना चाहा क्रोध भी न कर सकी। उस ने नायक की ओर से मुँह फेर लिया। नायक धरती में लेट गया— उसने बालिका के पैर छूने के लिए हाथ बढ़ाया। बालिका का भय बहुत कुछ दूर हो गया था। उसने कुछ क्रुद्ध और कुछ दुःख भरे स्वर में कहा—

"ऐसे भले हो तो यह काम क्यों करते हो?" बालिका के होंठ काँपने लगे।

युवक ने कहा—"बहिन, यह सब इस अभागे देश के लिए जिसके लिए हमने प्राण और शरीर दे दिया है। इस धन का खरीदा हुआ अन्न का एक दाना भी हमारे लिये गो मांस के समान है, हम निरुपाय होकर ही यह सब करते हैं।"

"फिर इसे क्यों मार डाला?"

"इस पापी का अपराध इससे भी अधिक था। यह दण्ड पाकर भी अभी पाप से उन्मुक्त नहीं हुआ-जब तक तुम क्षमा न करो। इसने हमारे दल को छिन्न-भिन्न कर दिया। पृथ्वी भर की स्त्रियाँ हमारी बहनें हैं। यह तो हमारा व्रत है!" युवक नायक का सुन्दर मुख लाल हो गया। उसके चारों ओर उज्ज्वल आभा फैल गई। उसने टपा-टप आँसू गिराते हुए कहा—"बहिन, इस पापी को क्षमा कर दो, वरना स्वयम् गोली मार लूँगा।" उसने पिस्तौल उठा कर अपने सिर में लगाली।

बालिका दौड़ी उसने पिस्तौल युवक से छीन ली फिर क्षण भर चुप खड़ी रही। इसके बाद उसने भर्राए स्वर में कहा—"खड़े हो जाओ। जमीन में क्यों पड़े हो!"

युवक ने कहा—"मेरे साथी को जब तक तुम क्षमा न करोगी-खड़ा न हूँगा। या तो क्षमा करो—या मुझे गोली मारो, पिस्तौल तुम्हारे हाथ में है। उसमें अभी चार गोलियाँ हैं। निशाना साधने की जरूरत नहीं। मेरी खोपड़ी में नली लगा कर घोड़ा दबा दो।"

युवक नायक की आँखें सूख गईं। उसके स्वर में तीखा-पन भी था। बालिका आगे बढ़ी उसने युवक का हाथ पकड़ लिया और कहा—"उठो-उठो।"

"तब क्षमा किया?"

"किया" बालिका रोने लगी पिस्तौल उसके हाथ से छूट गई युवक ने उसका आँचल आँखों से लगाया और कहा—

"बहिन अपने भाई को कुछ आज्ञा करो ?"

बालिका चुप रही । युवक ने कहा—"अगर तुम्हारी इच्छा नहीं तो हम यह धन नहीं ले जावेंगे । कहो क्या कहती हो ?"

बालिका कुछ न बोली । युवक कुछ देर बालिका की ओर देखता रहा फिर वहाँ से तेजी से बाहर आगया । बाहर लूट का सब सामान इकट्ठा था, सब डाकू चुपचाप नायक की प्रतीक्षा में खड़े थे । नायक ने अधिकार-सम्पन्न स्वर में कहा "यहाँ से एक पाई भी नहीं ले जाई जायगी ! तुम लोग बाहर चले जाओ । वहाँ, उस कमरे में तुम्हारे साथी का शव पड़ा है, उसे भी ले जाना होगा । "

शव को लेकर डाकू लौटने लगे । सब के पीछे नायक नीचा सिर किये जा रहा था । पीछे से किसी ने मृदुस्वर से पुकारा—"ठहरो"

युवक ने रुककर देखा—बालिका है । वह लौटकर उसके सन्मुख खड़ा हो गया । उसने तीखे स्वर में कहा—

"क्या कहती हो ?"

"लौटे क्यों जा रहे हो ?"

"यह सब ले क्यों नहीं जाते ?"

"यह भी हमारी मर्जी है ?"

"क्यों नाराज़ हो गये ?"—बालिका रो उठी । नायक की आँखें भी भीग गईं । उसने कहा—

"तुम्हारा क्रोध भाई के उपर से नहीं गया, उस भाई के ऊपर से जिसने जीवन और मृत्यु तक साथ देने वाले साथी को पागल कुत्ते की भाँति मार डाला—सिर्फ बहिन का अपमान करने के कारण, और जिसने उस पाप को अपने हृदय पर ग्रहण कर क्षमा माँगी । तुम लोग हमारी अज्ञान बहिनें हो जो उन साहसी भाइयों के दुःख को नहीं जानती हो जिनके हृदय धाँय-धाँय जल रहे हैं और जिन्होंने जवानी की वासनाएँ त्याग कर सन्यास लिया है, जो फाँसी की रस्सियाँ गले में डाले मृत्यु को ढूँढ़ते फिरते हैं । जिन्होंने मृत्यु को वरा है और जिनसे अपनी लाखों बहिनों का नंगा-भूखा रहना नहीं देखा जाता; तुम लोग उनसे साहनुभूति तक नहीं रख सकतीं ! तुम्हारे छोटे से घर की चहारदीवारी ही तुम्हारे जीवन और अस्तित्व का केन्द्र है । तुम भारत की अयोग्य पुत्रियाँ हो, जब तक तुम स्वार्थ और अज्ञान के गढ़े में हो देश की करोड़ों बहिनों की गुलामी नहीं दूर हो सकती ।"

सतर्क स्वर में युवक ने इतनी बातें कहीं। बालिका रो रही थी। उसने धीरे-धीरे आकरण युवक का हाथ पकड़ लिया। उसने कहा—"मैं हाथ जोड़ती हूँ। इसे तुम लेजाओ, तुम्हें ले जाना पड़ेगा।"

"तुम्हारा दिल दुखेगा।"

"तुम न लेजाओगे तो मैं जान खो दूँगी।"

युवक नायक ने साथियों को संकेत किया। वे रुक गये वह गृहपति के पास जाकर बोला—"क्या आप के पास और धन सम्पत्ति है ?"

"अब कुछ नहीं है।"

"इसमें से जितना चाहे रख लीजिऐ"

गृहिणी प्रभावित हो रही थी, उसने एक भारी सा सोने का जेवर उठाकर कहा-बैशाख में तुम्हारी बहिन की शादी करनी है उसके लिए यह काफ़ी है। मेरे पुत्रो जाओ, यह सब तुम ले जाओ। भगवान् तुम्हारा कल्याण करे। युवक ने गृहिणी के पैर छुए, साथियों ने गट्ठड़ उठाये और चल दिये।

बालिका युवक के पीछे-पीछे जा रही थी, जब उसने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा, उसने पुकारा—

"भाई ?"

युवक हर्षातिरेक से विह्वल हो कर लौटा—

"कहो, बहिन क्या कहती हो ?"

"तुम्हें आना पड़ेगा" बालिका ने मन्द मुसकान से कहा उस अभेद्य अन्धकार में वह मुसकान को देख तो न सका-पर अनुभव करके बोला—

"आऊँगा बहिन !"

"नाम तो बताओ !"

"देवीसिंह ।"

"अच्छा, बैशाख कृष्ण तेरस । याद रहेगा !"

"अवश्य, यदि स्वाधीन रहा तो आऊँगा जरूर ।"

"आना ही पड़ेगा"

"आऊँगा बहिन ।"

नायक हँस पड़ा फिर रो पड़ा । उसने बालिका के पैर छुए और मण्डली-सहित अन्धकार में डूब गया ।

(४)

बैसाख कृष्ण तेरस थी । कृष्णा का आज ही विवाह था । घर में धूम थी । बरात आ गई थी । ज्यों-ज्यों दिन ढल रहा था कृष्णा का उद्वेग बढ़ता जाता था । वह प्रति क्षण देवीसिंह के आने की प्रतीक्षा में थी । सन्ध्या हो गई । दिये जल गये । द्वार

पर बाजे बजा रहे थे। बरात भोजन कर रही थी, लोग दौड़-धूप कर रहे थे। कृष्णा अब भी उस आगन्तुक की प्रतीक्षा में थी।

एक दुबला-पतला युवक आया और इधर-उधर देखघर में घुस गया। उसका वेश साधारण था। उसने गृहपति को पहचान कर कहा—"लालाजी मुझे आप से कुछ कहना है?"

"देवीसिंह आज आवेगा लाला को भी उसकी प्रतीक्षा थी। उन्होंने सतर्क दृष्टि से युवक को देखकर कहा—"तुम कौन हो?"

"मैं देवीसिंह का सन्देश लाया हूँ"

"वे कहाँ हैं?"

"यह मैं नहीं बता सकता, कृपा कर क्षण भर के लिए कृष्णा बहिन से मेरी मुलाकात करा दीजिये।"

लाला जी ने चुपचाप उसे गृहणी के पास पहुँचा दिया। कृष्णा ने उसे देखा और कहा—"क्या वे न आ सकेंगे?"

"नहीं बहिन, यह सम्भव ही न रहा। उन्होंने क्षमा माँगी है और आसीस दी है।"

"वे हैं कहाँ?" बालिका आशंका से पीली पड़ गयी।

"निकट ही, पर देख न सकोगी?"

"क्या कैद हो गये?"

"सब कुछ हो गया, बहिन ।"

"क्या हो गया ? खुलासा कहो ।"

"नहीं आज इस समय वह बात कहने योग्य नहीं ।" युवक ने बड़ी ही कठिनाई से उमड़ते हृदय को रोका।

बालिका सूख गई उसने कहा--"तुम्हें कहना होगा ।"

"नहीं बहिन, न कह सकूँगा ?"

"कहो, कहो, मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ ?"
वह रोने लगी ।

युवक ने सिर झुका कर कहा—तुम्हारी आज्ञा मैं टाल नहीं सकता बहिन, उन्हें फाँसी की आज्ञा हो गई है ।"

बालिका आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगी। उसके मुँह से बोल न निकला। युवक ने दूसरी ओर मुँह फेर कर कहा

"कल प्रातःकाल ५ बजे उन्हें फाँसी होगी। आज का मंगल-कार्य समाप्त होने के ही लिए उन्होंने एक सप्ताह की अवधि ली थी ।"

बालिका अब भी मुँह फाड़े खड़ी रही। वह बेंत की भाँति काँपने लगी-वह मूर्छित-सी हो रही थी।

"युवक ने गृहणी की सहायता से उसे बिस्तर पर लिटा दिया। उसने कहा—"बहन, मैंने समझा था-तुम वीर भाई की वीर बहिन हो, सब सुनोगी !"

"मुझ में साहस है पर मैं विवाह नहीं करूँगी ? माँ···"

"नहीं बहिन, अगर तुम विवाह नहीं करोगी तो वे कल हँसते और गीत गाते हुए फाँसी पर न जावेंगे। वे विरोध करेंगे और उन्हें घसीट कर ले जाया जावेगा। यह उनका निर्णय है, क्या यह ठीक होगा बहिन ?"

"उनकी आज्ञा क्या है ?" बालिका ने रोते हुए कहा।

"तुम्हारा विवाह ठीक ठीक सकुशल समाप्त हुआ है यह मैं अपनी आँखों से देखूँ और समय पर उन्हें सूचना देदूँ।"

"विवाह हो जायगा, तुम देख लेना।"

बालिका के चेहरे पर मुर्दनी छा रही थी; पर आँसू न थे।

"उनका एक और भी सन्देश है!"

"वह क्या है ?"

"उन्होंने कहा है अब तुम्हारी जैसी वीर बालाओं को देश के लिए बलिदान होने की जरूरत है ?"

"उनसे कहना, मैंने आज से अपने प्राण और शरीर देश के लिए दिये, पर मैं उनका पथ न ग्रहण कर सकूँगी।"

"बहिन, प्रत्येक प्रतिभाशाली मस्तिष्क अपने पथ का निर्माता है।"

"एक निवेदन और है।"

युवक ने बगल से नोटों का एक बण्डल निकाला और कहा—"कुल १० हजार हैं।" जब तक हम में से एक भी जीवित है आज से इसी समय प्रति वर्ष इतनी ही रकम आपको इसी स्थान पर मिलती रहेगी। आप चाहे भी जहाँ रहें। आज के दिन इस समय यहीं उपस्थित रहें।" उसने नोट बालिका के आगे बढ़ाये।

बालिका ने कहा—"जब तक तुम में से एक भी जीवित है यह रकम तुम मेरी तरफ़ से देश के किसी अच्छे काम में लगाते रहो—पर प्रतिज्ञा करो—कि भविष्य में यह रकम किसी अनुचित मार्ग द्वारा न प्राप्त की जायगी और किसी भी हिंसक उपयोग में न लाई जायगी।"

"आपकी आज्ञा का यथावत पालन होगा। और आपको उसकी कैफ़ियत मिल जायगी।"

इसके बाद बातचीत बन्द हुई। विवाह मण्डप में मंगल वाद्य बज रहे थे। पुरोहित उपस्थित थे। बालिका चुपचाप विवाह वेदी पर जा बैठी। विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। युवक उसी रात बिदा हो गया।

वह जेल के फाटक पर उपस्थित थी। विवाह की हल्दी उसके शरीर पर थी और कंगना हाथ में। लाश उसने ले ली उसने देर तक उस वीर युवक का तेजपूर्ण मुख देखा,

अभी शरीर में गर्मी और चहरे र लाली थी। उसने अपने आँचल से उसका मुँह पोंछा-रोली का टीका लगाया राखो भी बाँधी और माथा टेककर प्रणाम किया। इसके बाद उसने वहीं खड़े हो कर मन ही मन कुछ प्रण किया, और चल दी।

यह दर्द

यह दर्द हमेशा बना ही रहे,
दिल हाय किसी का दुआ करता है।
निकला करती हैं उसासें सदा,
दृग-द्वार से नीर चुआ करता है।
यहाँ घाव लगे अनेक उन्हें,
हठ से छली कोई छुआ करता है।
एक आग लगी रहती है यहाँ,
एक दर्द हमेशा हुआ करता है।

ले०—श्री 'मुक्ति'

पिता श्री*

क्या हुआ ?

ऐं ! अरे जरा मुझे भी तो बताओ ? इतना क्यों चिल्लाते हो, इतनी धूम धाम कैसी है ? यह अदालत में जय जयकार किस लिये ? वह छूट गया क्या ? तब गया किधर ? इधर ले आओ; क्या तुमने मेरे यहाँ आने की उसे खबर नहीं दी थी ? देखो वह, जमादार डंडों से उन सब को पीट रहा है, कहीं उसके एकाध चोट बैठ गई तो बस । सर्दी के दिन और वह ढाई पाव की हड्डी पर तुम हँसते क्यों नहीं हो ? वे फूल मालाऐं उसे पहना दीं या नहीं ?

ऐं ! फिर जय जय कार ! लो, वह फिर आ रहा है, अरे ! इतनी मालाऐं बिट्ठुआ को पहना दीं, ! बड़े नादान हो, आहा हा ! कैसा सजता है मेरा राजा

* एक वृद्ध पिता का वैभव्य—आँखों देखा ।

बिछुआ है, पर उसके अगल बगल सिपाही क्यों हैं ? यह क्या ? उसकी बेड़ियाँ हथकड़ियां भी नहीं छुटाई गईं, और वह उधर कहाँ को जा रहा है। मैं तो यहाँ खड़ा हूँ, उसे पुकारो ! पुकारो, आवाज दो, अच्छा चलो वहीं चलें।

क्या कहा ? जोर से बोलो, मैं जरा कम सुनता हूँ। बूढ़ा अपाहिज आदमी हूँ ? सजा ! सजा होगई ! कितनी ? डेढ़ वर्ष की। डरो मत सच कहो, मैं घबराने वाला आदमी नहीं हूँ, मेरा बेटा देश के लिए जाता है तो उत्तम है, तब क्यों नहीं कहा था ? दुराशा का मन में व्यर्थ ही उदय हुआ। यह लो उसकी मा भी आ गई।

अरे ! तुम रोती हो वाह ? मेरी हिम्मत तो देखो, मैं बूढ़ा रोगी अपाहिज। यह रोने का मौका है ? देखो वह बेटा जा रहा है, फूलों और आशीर्वादों से लदा हुआ। जय जय कार की उद्धारक गंगा में तैरता हुआ। उसके मुँह की लाली देखो, मेरे और अपनी सफेदी देखो, अपने कुल और घराने के नाम को देखो और भगवान को धन्यवाद दो। हाँ भगवान को धन्यवाद दो। देखो यहाँ से वहाँ तक नर-मुण्ड का समुद्र हिलोरें ले रहा है, जैसे इन सब हिन्दू और मुसलमानों पर मेरे बेटे ने जादू कर दिया हो हँसो, किस बाप का

यह सौभाग्य कभी नसीब होता है ?

जाओ बेटे ! कुछ चिन्ता नहीं, पर यह छाती में दर्द कैसा हुआ ! जैसे किसीने बर्छी मारी हो। जरा मुझे बैठने दो। ओफ् ! आँखों में अन्धेरा आ गया कुछ सुनाई नहीं देता, क्या बेटा बहुत दूर निकल गया। जाने दो अच्छा तुम सब मेरे पास आओ, धीरज से मेरी बात सुनो। वह तो गया ही ? अब तुम लोग होशियारी से घर सम्हालना, जिस से उसकी मा को कष्ट न हो, जिससे कुल की कान न डूबे। बेटा लौटकर दुखी न हो- और सुनो-जरा नजदीक आजाओ। देखो-देखो······ओफ़- कुछ याद नहीं आता···ये इतने लोग कौन चिल्ला रहे हैं ?— सुनो······हाँ—देखो उसे, बेटे को यह खबर मत पहुँचना—ज ······य···वि···श्व···म्भ···र।

सिंह-वाहिनी *

(१)

सन्ध्या का समय था। एक वृक्ष के झुर मुट में दो व्यक्ति धीरे धीरे बातें कर रहे थे। एक युवक था। दूसरी युवती।

युवक ने कहा—

"ओह जीवन का मूल्य कितना है, चलो भाग चलें, मैं इस खद्दर को भस्म किये देता हूँ।"

"और देश प्रेम ?"

"भाड़ में जाय।"

"वह वीर भाव ?"

"नष्ट हो"

"वे बड़े बड़े व्याख्यान ?"

"बकवाद थी"।

"तुम्हीं तो वे थे ?"

"जब था तब था"

---

* एक सत्य घटना पर।"

"अब ?"

"अब मैं और तुम चलो भाग चलें।"

"आज की सभा में ?"

"मैं नहीं जाऊँगा।"

"क्यों?"

"मुझे सूचना मिल चुकी है कि आज मेरी गिरफ्तारी होगी।

"तब वे हजारों भोले भाले मनुष्य ?"

"सब जहन्नुम में जाय।"

युवती चुप हुई। युवक ने कहा—

"क्या सोचती हो ?"

"कुछ नहीं। कब चलोगे ? कहाँ चलोगे ?"

"यह फिर सोचेंगे। आज रात की गाड़ी से पश्चिम को कहीं का भी टिकट लेकर चल दो, फिर शान्ति में सोचेंगे।"

"अच्छी बात है—मुझ से क्या कहते हो ?"

"रात को ६ बजे तैय्यार रहना।"

"और कुछ।"

"कुछ नहीं"

"तब जाओ"

युवती बिना युवक की प्रतीक्षा किए चली गई।

(८)

भीड़ का पार न था। रामनाथ जी का व्याख्यान होगा। साढ़े आठ का समय था। नौ का समय होगया। कहाँ है! वह सबल वाग्धारा का वीर देशभक्त? हज़ारों हृदय उस के लिए उत्सुक थे। कई एक लाल पगड़ियाँ और एकाध सुनहरी झब्बे लोह भूषण छिपाये उनकी प्रतीक्षा में थे।

सभापति ने ऊब कर कहा—महाशय, खेद है कि व्याख्याता महाशय का अभी तक पता नहीं अतएव सभा बर्खास्त की जाती है।

एक बरीक स्वर ध्वनि मानो आकाश चीर कर जनरव को मूक कर गई। एक स्त्री धीरे धीरे मञ्च की ओर अग्रसर हुई। उसने कहा—भाइयो! श्री रामनाथ जी किसी विशेष कार्य में भाग लेते हैं, उनके स्थानापन्न मैं अपने प्राण और शरीर को लिये हाज़िर हूँ। मुझे दुःख है कि मैं उनकी तरह व्याख्यान नहीं दे सकती। मगर मैं अभी इसी क्षण मजिस्ट्रेट की आज्ञा का विरोध करती हूँ। मैं अभी निर्दिष्ट स्थान पर जाती हूँ, जिसे चलना हो साथ चले। पर जो सिर्फ व्याख्यान सुनने के शौक़ीन हैं वह कहीं से किराये पर कोई व्याख्याता बुलालें।" स्त्री पुरुषों का आदेश करें—यह पुरुष कम सहन करते हैं। लोग स्तब्ध थे। स्त्री ने क्षण भर स्तब्ध खड़े रह कर अपना काँसा कसा

और चली, सैकड़ों पुरुष पीछे थे। दो घण्टे बाद सब के साथ वीरबाला जेल में थी-भयानक कोठरी में बन्द।

(३)

"तुम ने यह क्या किया ?"

"जो कुछ तुम्हें करना चाहिये था।"

"मुझ से कहा क्यों नहीं"

"तुम इस योग्य न थे!"

"अब!"

"तुम भागो मैं यहाँ तुम्हारे स्थान पर जीते जी हूँ।"

"मैं भागूँगा!"

"तब क्या करोगे!"

"मैं कहूँ!"

"अवश्य।"

"और तुमसे!"

"मुझ से"

युवती जोर से हँसी। हँसी में अवज्ञा थी। उसने कहा—तुम्हारे उस त्याग और वीरता के रूप को ही मैंने प्यार किया था, पर उसके भीतर तुम्हारा यह आदर रूप है, इसकी आशा न थी। जाओ-हिंदू स्त्री एक ही पुरुष को जीवन में प्यार करती है। मैंने जो भूल की है उसका प्रतिरोध करूँगी। जाओ प्यारे,

जीवन का बहुत मूल्य है"।

इतना कहकर युवती कोठरी में पीछे को लौट गई। वार्डर ने युवक को बाहर कर दिया।

४ मास के बाद युवती ने जेल से लौट कर सुना—रामनाथ का यश दिगन्त में व्याप्त है। वह इस समय जेल में है। इन चार मासों में उसने वीरता की हद कर दी है। वह किसी तरह न रुक सकी। जेल में मिलने गई-रामनाथ जेल के अस्पताल में विषम ज्वर में भुन रहा था।

"कैसे हो ?"

"ओह तुम आ गईं ! देखो कैसा अच्छा हूँ।"

"मुझे क्षमा करो, मैंने तुम्हारा अपमान किया था।"

"तुमने मेरे मान की रक्षा किस तरह की है, वह कहने की वस्तु नहीं।"

"अब ?"

"मैं मरूंगा नहीं—फिर छुटूंगा।

"तब तक मेरी प्यारी-तुम मेरे स्थान पर···"

"पर मैं व्याख्यान नहीं दे सकती"

"उसकी जरूरत नहीं, तुम्हारे मौन भाषण में वह बल है कि बड़े वाग्मियों की मर्यादा की रक्षा हो जाती है।"

"तबियत कैसी है ?"

"अब और कैसी होगी ?"

"मैं आशा करती हूँ, शीघ्र अच्छे हो जाओगे"

"और बाहर आकर अपनी सिंह वाहिनी को युद्ध करते आँखों से देखूँगा।"

"मुझे क्या आज्ञा है"

"यही कि जब जब मैं नामर्द बनूँ अपना प्यार और हृदय देकर वीर बनाये रखना।"



आगये ?*

—:❀:—

आगये ? हमारी बेगैरत आखें एक टक तुम्हें देखने का साहस कर रही हैं। हम अपने कायर हाथों में तुम्हारे स्वागत के लिये फूलों और फूलमालाओं का ढेर ले आये हैं, लो, धारण करो, प्रसन्नता से फूलो, हमें शाबाशी दो, हमारी पीठ ठोंको, हम ने खास तुम्हारे लिये ही, इतना सब कुछ किया है। हम अन्तः करण से तुम्हारा सम्मान करते हैं।

क्यों ? सुस्त क्यों हो गये ? क्या हमारे स्वागत में कुछ कमी है ? हमने कई दिनों से प्रतीक्षा कर रखी थी, कल से खाना सोना भी छोड़ दिया था, धोबी से कड़ा तक़ाज़ा कर के कपड़े धुलवाये हैं और अन्धेरे में ही हजामत बनवा कर सज धज कर आये हैं तुम्हारे आने

* ये पंक्तियाँ एक बार श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के जेल से लौटने पर स्वागत कर्ताओं को लक्ष्य करके लिखी गई थीं !

का आनन्द त्योहार की तरह हमने मनाया है। हम तुम्हें बहुत ही सम्मान करते हैं। समझते हो?

खेद है, तुम नहीं हँसते हो, तुम्हारी मूंछ का एक बाल भी नहीं मुस्कराता? आखिर बात क्या है? हाय तुमने हमारी ओर से मुँह फेर लिया !!!

आखिर हम कर ही क्या सकते थे! तुम्हारे जाने के बाद हम बिना रस्सी के बैल हो गये; हमने तैरना सीखा कब था? तिनका गँवा कर हम डूब गये! इसमें अचरज क्या है? तुम क्या समझते हो? क्या घर भर में सभी को वीर होना चाहिये ना, यह बात हम तुम्हारी नहीं मानेंगे। हम ने तुम्हें वीर बना दिया, तुम्हें मैदान में धकेल दिया, तुम्हारी छाती घायल होते देख कर भी हम खुल कर न रोये, तुम्हारे पीछे किसी न किसी तरह जीते रहे, यह थोड़ा है? इतना भी कितने कर सके हैं?

तुम्हारे पीछे वे लोग आये थे, कहने लगे, कहाँ है प्रतापी सम्प्रदाय! उनका आन के नाम पर सिर काटा जायगा, हम पहले तो डर कर घरों में छिप गये, सन्न हो गये, कुछ कहते बना ही नहीं। किसकी सलाह लेते? किस की आढ़ लेते? कैसे हिम्मत रखते? तुम तो घर थे हो नहीं, पर अन्त में हमें निकलना पड़ा,

हमने सलाह कर के एक स्वर से कहा—महाशयो ? सिर काटने की बात तो झूठ है, अलबत्त, आप जब आये हैं तो हम आप को खाली भी नहीं लौटा सकते, हम अपनी नाक कटा सकते हैं, लीजिये हाज़िर है ?

वे हँसते हुए चले गये, शायद हम पर खुश हो गये थे। बस तुम्हारे पीछे हमने यही कौशल किया। दुनिया जब सदा से आन के नाम पर सिर कटाती आई है—तब क्या हम नाक न कटा सकते थे ? आखिर हैं तो हम तुम्हारे ही साथी, क्या हम में इतनी हिम्मत भी न होती ?

चलो उठो, हमने तुम्हारे लिये बड़े उत्तम २ व्यंजन बना रखे हैं, आज हम भी बहुत भूखे हैं। कल रोटी न खाई गई, हमने सोचा अब कल ही माल उड़ावेंगे।

वहीं खड़ा रहा ?

:-(:)—(:)-:

निश्चल और निर्भय, सीधा तीर के समान। कुछ पर्वाह नहीं। सुलगने दे, धधकने दे, और आकाश तक ज्वाला की लपलपाती लहरें उठने दे।

वहाँ तेरे प्यार जी तोड़ रहे हैं, घायल हो रहे हैं, जूझ रहे हैं, तू उधर मत देख। नये योद्धाओं को भेज खबरदार! आवाज़ करारी बनाये रहना, स्वर काँपने न पावे आंखों में पानी न आने पावे।

यह युद्ध है। युद्ध में जूझ मरना उतनी वीरता नहीं है। सच्ची वीरता—प्यारों के बलिदान को उत्फुल्ल नयनों से देखने में है।

मुख़बिर *

—:❀:—

(१)

एक २२ वर्ष का सुन्दर सुगठित युवक सिर्फ एक स्वच्छ खद्दर की धोती पहने घास पर घुटनों के बल औंधा पड़ा था, और उसकी पीठ पर एक गौर वर्ण सुकुमार बालक, जिसकी आयु कोई ५ वर्ष की होगी सवार था। बालक युवक के कान पकड़ कर उसे घोड़ा बनाये हुए था और लात मार कर अपने घोड़े को चलाने का प्रयत्न कर रहा था। पर घोड़ा वहीं अड़ा खड़ा था।

शरदृतु का सुन्दर प्रभात था, सुनहरी धूप चारों ओर फैली हुई थी। बालक और युवक दोनों मानो संसार भर के प्राणियों की अपेक्षा सर्वाधिक प्रसन्न थे।

गाँव छोटा सा था और सामने हरे भरे खेत लहरा रहे थे।

---

* क्रान्ति कारी दल की एक रोमांचकारी कथा।

उन्मुक्त वायु इन प्रकृत विनोदियों से सानन्द विनोद कर रही थी। धीरे २ एक और दुबला पतला युवक वहीं आ खड़ा हुआ वह इन दोनों से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे खड़ा इनका खेल देखने लगा। घोड़े का अभिनय करने वाले युवक ने उसे देखा नहीं। वह ज़ोर से हँस और बदन हिलार कर सवार को गिराने की चेष्टा कर रहा था। हठात् बालक का ध्यान निकट खड़े उस आगन्तुक की ओर चला गया। उसका उल्लास प्रवाह रुक गया। उसने कहा बाबू......।"

युवक ने आँख उठा कर देखा और चौंक उठा। फिर उसने बच्चे को धीरे से पीठ से उतार कर उसे घर चले जाने का आदेश किया और सँकेत से युवक को निकट बुला कर पूछा "सब ठीक है ?"

"नहीं।

"क्या हुआ ?"

"प्रयत्न निष्फल हुआ।"

युवक की आँखें चमकने लगीं। उसने कुछ ठहरकर पूछा— "कारण ?"

"सरदार स्वयं ही आपको कैफ़ियत देना चाहते हैं।"

"क्या कोई और भी सम्वाद है ?"

"हाँ, पुलिस ने नं० ४ और ३ सेन्टरों पर छापा मार कर वहाँ के सभी कार्य कर्त्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया है।"

"सरदार कहाँ है ?"

"वे १४ वें सेंटर में परसों शाम के पौने आठ बजे आपकी प्रतीक्षा करेंगे।"

"सेंटर २ में क्या हो रहा है ?"

"अपने कार्य क्रम की तैयारियाँ।"

"प्रयोग तिथि कौन सी है ?"

"चौथी नवम्बर।"

"बाहर की क्या खबर है ?"

"कुछ भी नहीं।"

"सातवें सेंटर का प्रयोग कब होगा ?"

"अनिश्चित समय के लिए वह स्थगित कर दिया है।"

"किसकी आज्ञा से और क्यों ?"

"पुलिस बहुत ही सावधान है और साधन भी यथेष्ट उपस्थित नहीं।"

"अब तुम कहाँ जाओगे ?"

"मैं आपका आदेश सरदार को दूँगा।"

"अच्छी बात है मैं नियत समय पर सरदार से मिलूँगा

आगन्तुक चला गया और युवक गम्भीर भाव से वहीं घास पर बैठ कर अपनी काल्पनिक दृष्टि से किसी अज्ञात को देखने लगा।

थोड़ी देर बाद एक और व्यक्ति आकर युवक के पास बैठ गया और स्नेह भरे स्वर में पूछा—

"वह फिर आया था क्या भय्या ?"

युवक चौंक उठा और हँस पड़ा दूसरे व्यक्ति ने फिर कहा—

"लल्लू कहता था वह बाबू आया है।"

"हाँ आया तो था।"

"कुछ झगड़ा तो नहीं हुआ ?"

"कुछ नहीं मैंने समझा दिया। वह १५ दिन को मान गया है। कुछ अधिक ब्याज का वादा करने से ही वह सन्तुष्ट हो गया।"

"पर भैय्या, यह कर्ज चुकेगा कैसे ?"

"सब चुक जायगा, तुम चिन्ता क्यों करते हो ? लल्लू खा चुका ?"

"कहाँ ? वह बिना तुम्हारे थोड़े ही खायगा।"

"बड़ा पाजी है। चलो फिर खायें। ओह ! भूख के मारे पेट में चूहे कूद रहे हैं।"

दोनों चल दिए। युवक कनखियों से दूसरे व्यक्ति को देख रहा था। और वह अत्यन्त चिन्तित भाव से नीचा सिर किये कुछ सोचता जाता था। हठात् उसने सिर उठा कर कहा—

'एक काम किया जाय भैय्या, वह गया किधर को है ? मैं उसे दौड़ कर बुला लाता हूँ।"

"क्यों क्या करोगे ?"

"घर में एक दो गहने हैं उन्हें बेच कर इसका रुपया अभी दे दिया जाय।"

"इस समय तो बला टल ही गई, फिर देखा जायगा। इस वक्त चिन्ता न करो।"

"तुम क्या कुछ कम चिन्तित बैठे थे ? मैं मर जाऊँगा पर तुम्हें और लल्लू को कभी उदास नहीं देख सकता।

युवक ने एक बार जी भर अपने इस दुबले पतले मित्र की ओर देखा। बड़ी कठिनाई से उसने अपना उद्वेग और आँसू रोके फिर थोड़ी देर बाद वह अस्वाभाविक रूप से हँस पड़ा। उसकी हँसी से वह व्यक्ति भी हंस पड़ा और पूछा—।

"इतनी ज़ोर से क्यों हँसे ?"

"तुम्हारे भोले पन पर।"

क्या तुम मेरी बात पसन्द नहीं करते ?"

"हरगिज़ नहीं, भाभी की चीज़ लेने का हमें भला क्या अधिकार है।"

घर निकट आ गया और बालक ने चिल्ला कर कहा—"छोटे चाचा, देखो यह मेरा नया कुरता।"

"यह कहाँ पाया रे पाजी इसे तो मैं पहनूँगा। युवक ने बच्चे को गोद में उठा लिया। इसके बाद तीनों प्रेमी मित्र

एक साथ भोजन करने बैठे।

(२)

युवक का नाम और व्यवसाय बताने की आवश्यकता नहीं। उवके मित्र का नाम था हरसरनदास। इसकी आयु थी लगभग ३५ वर्ष एकाध बाल पकने लगा था, शरीर का दुबला पतला भद्दा सा आदमी था। बच्चा इसी व्यक्ति का एक मात्र पुत्र था बच्चे की माता हरसरन की दूसरी पत्नी थी; वह सुन्दर, वस्त्र और अत्यन्त विनोदी स्वाभाव की स्त्री थी। युवक न इसकी जाति का था न बिरादरी का। वह एक अनाथ बालक के तौर पर इस गाँव में अल्पावस्था में आया और यहीं बड़ा हुआ था। बीच के सात आठ वर्ष उसने दिल्ली में व्यतीत किये थे। इन सात आठ वर्षों का उसका गोपनीय इतिहास कोई नहीं जानता। लोग तरह २ के अन्दाजा लगाया करते थे। कहता था वह कालिज तक की पढ़ाई पास कर चुका। कोई कहता था वह कोई बड़ा कारबारी हो गया है। पर युवक सिवा १०-५ दिनों के लिये बीच २ में ग़ैर हाज़िर हो जाने के अपने कार बार के सम्बन्ध में कुछ प्रमाण नहीं रखता था। अलबत्ता वह गाँव भर में प्रिय और आदरणीय अवश्य माना जाता था। वह सबकी सब प्रकार की सेवा करता। उसका चरित्र निर्मल और उच्च था। उसकी भाषा संयत विनम्र और स्वभाव अत्यन्त सरल था। गाँव वाले उसे मानते प्यार करते

और आड़े वक्त उसी से सलाह मशवरा भी करते थे।

हरसरन पर उसकी योग्यता' देशभक्ति, त्याग और चरित्र का काफी प्रभाव था। हरसरन के बच्चे और उस युवक का प्राण तो एक ही था वह और उसकी स्त्री दोनों ही युवक की मानों पूजा करते हैं। युवक का घर नहीं कुटम्ब नहीं, सगे सम्बन्धी भी नहीं वह हरसन के ही घर रहता वहीं खाता सोता था मानों वह उसी घर का व्यक्ति है। ग़रीब हरसरन तन मन से युवक के सुख दुख का ख्याल रखता था।

भोजन के बाद युवक ने कहा—

"देखो भाई हरसरन, आज मेरा शहर जाने का इरादा है।"

"क्यों!"

"एक नौकरी लग गई है, अब शायद वहीं रहना होगा।"

"कितने की नौकरी है?"

"५०) ६०) रूपये तो मिल ही जावेंगे।"

"बस इतने ही!"

"नौकरी आराम की भी तो है।"

"क्या सरकारी है?"

"राम राम, क्या मैं सरकारी नौकरी करूँगा?"

"वही तो, फिर चलो हम भी शहर चलें, वहीं कुछ काम धन्धा कर लेंगे।"

"तुम वहाँ भला क्या करोगे ?"

"हम तुम्हें जरा भी कष्ट न देंगे, अपने लिये कोई काम ढूँढ लेंगे, क्या कोई नौकरी नहीं मिल जायगी ?"

"नहीं ऐसा न होगा। तुम झंझट में पड़ जाओगे। यहाँ मौज करो मैं बराबर आता रहूँगा !"

इतने में हरसरनदास की पत्नी ने आकर कहा-"वहाँ कहाँ खाओगे ! कहाँ रहोगे ! फिर लल्लू तुम्हारे बिना कैसे रहेगा !"

बहुत वाद विवाद के वाद दूसरे दिन चारों प्राणियों ने कूच कर दिया और दिल्ली के एक मुहल्ले में साधारण मकान किराये पर लेकर रहने लगे। हरसरन दास किसी कपड़े की दुकान में २०) मासिक नौकर हो गया। यहाँ रहते इन लोगों को दो मास व्यतीत हो गये। हम नहीं कह सकते कि युवक ने कुछ वेतन लाकर हरसरन के हाथ पर धरा या नहीं। हाँ इतना हम जानते हैं कि अब भी हरसरन ही युवक को खिलाता और अपने घर में रखता है।

(३)

आधी रात व्यतीत हो रही थी। चारों ओर अँधेरा छाया हुआ था, थोड़ी वर्षा हो जाने के कारण सर्दी भी चमक गई थी। आज युवक अभी तक नहीं आया था, बच्चा उसकी राह देखते २ सो गया था और दोनों स्त्री पुरुष बिना सोये युवक

की प्रतीक्षा कर रहे थे। इधर कई दिनों से युवक का समय पर आना नहीं हो रहा था। वह बहुत व्यस्त और चिन्तित भी रहता था। हरसरन बहुत चेष्टा करने पर भी उसके हृद्गत भावों को नहीं जान सका था। पर वह इतना जरूर समझ गया था कि कुछ भारी भेद अवश्य है। मेरा यह मित्र किसी असाधारण काम में जुटा है। पर वह उस पर इतनी भक्ति रखता था कि वह बिना भेद जाने ही उसका सहायक और समर्थक बन गया था।

लगभग १ बजे युवक आया और धीमे स्वर से कहा, "हरसरन भाभी को दूसरे कमरे में भेज दो। अभी कुछ दोस्त यहाँ आवेंगे। एक मित्र घायल हो गया है।"

हरसरन लपक कर व्यवस्था करने लगा। क्षण भर ही में दो व्यक्ति एक अल्प वयस्क युवक को पीठ पर लादे भीतर घुस आये। यह बेहोश था, उसका एक हाथ बिल्कुल ही उड़ गया था मुँह झुलस गया था; और दूसरे दोनों आदमियों में से एक थोड़ा घायल था। उसके वस्त्र कालिक और खून से भरे थे। बेहोश व्यक्ति को चारपाई पर लिटा कर युवक ने हरसरन से कहा—"दरवाजा बन्द कर दो।"

इसके बाद गर्म पानी करके उन्होंने मूर्छित युवक के घावों को धोया और पट्टी बांधी। दूसरे घायल की भी पट्टी आदि बाँधी

गई। फिर उन दोनों की पोशाक भी बदल दी गई।

चारों व्यक्ति चुपचाप घायल और बेहोश युवक को घेरे बैठे थे युवक ने हरसरन से कहा—"भाई हरसरन, अब मैं कुछ भेद तुम पर प्रकट करूँगा। क्या तुम सुनने को तैयार हो ?"

हरसरन इसकी प्रतीक्षा में था। उसने कहा, "फिक्र न करो, मुझे क्या करना होगा, कहो।"

भाई हरसरन ! तुम्हारे स्त्री बच्चे हैं इस कारण मैंने तुम्हें अलग ही रखना ठीक समझा था' पर अब तुमसे कुछ छिपाना मैं पाप समझता हूँ। परन्तु देखो मामी को कुछ भी मालूम न होना चाहिये। समझे ?"

"ऐसा ही होगा।"

'तब सुनो, तुम अखबारों में बम, खूनखराबी, गोली पिस्तौल और डाके आदि की घटनाएँ पढ़ा करते हो !"

"हाँ, हाँ।"

"हमी लोग वह सब करते हैं।"

"मुझे भी शक था भैय्या, मगर......"

"सुनो, मैं सबका प्रधान हूँ। देशभर में सैकड़ों हमारे सेन्टर हैं हमने राज्य सत्ता को जड़ से उखाड़ने का सारा सरंजाम कर लिया है, हमारे पास रुपया भी बहुत जमा है।"

"परन्तु......"

"सुनते आओ, तुम देखते हो हो कि मैं तुम्हारी कसाले की रोटी खाता हूँ और एक पैसा भी मेरे पास नहीं रहता। यह धन देश का है हमारा नहीं। इसकी एक पाई भी अपने काम में लेना हमारे लिये हराम है, यही हाल मेरे इन मित्रों का है। ये सभी कालिज के उच्च डिग्री प्राप्त बड़े २ खान्दानी रईसों के बेटे हैं। पर ये अपने गुलाम देश की आज़ादी के लिये करोड़ों भूखों और नंगों के पेट और आबरू की रक्षा के लिये तन मन धन दे चुके हैं। किसी ने व्याह नहीं किया है। दुख और मृत्यु इनके लिये कुछ नहीं है। जीवन का मोह ये त्याग चुके हैं। वेदना और प्रलोभन इनसे दूर हैं ये महात्मा, योगी, तपस्वी देश के बालक हैं। भाभी की हट और आग्रह से मैं बहुत अच्छा खाता पहिनता हूँ। पर मेरे ये प्यारे भाई बहुधा फ़ाके करते, या कहीं मेहनत मजदूरी करके पैसा मिलने पर चना चबैना खाकर पानी पी लेते हैं।"

हरसरन सक्ते की हालत में बैठा था। उसने सिर पर से पगड़ी उतार कर युवकों के पैरों पर रखदी, उसके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग गई। उसने हिचकियाँ लेकर कहा— "मेरा मन कहता था तुम देव दूत हो; अब तुम देव दूतों के सरदार निकले, मैं तुम्हारे पैरों की धूल हूँ। मेरा भी तन मन तुम्हारे लिये है। बाल बच्चे दार हूँ तो क्या, मैं प्राणों को

कुछ भी नहीं समझता भैया, चाहे अब तुम सबके लिये मेरा चमड़ी हाज़िर है जूते बनवालो। जहा तुम्हारा पसीना है वहाँ मेरा खून गिरेगा।"

युवकों ने उसे छाती से लगाया। अब युवक ने कहा—"जो वीर इस समय मृत्यु शय्या पर है यह एक लाड़ली रत्न है। यह मा का एकलौता बेटा है इसकी उम्र १८ वर्ष की है। हाल ही में इसने एम० ए० पास किया है। हम लोग कुछ भयानक बम के प्रयोग कर रहे थे कि एक बम फट गया और यह वीर इस दशा को प्राप्त हुआ। अब इसके प्राणों की रक्षा सम्भव नहीं दीखती। किसी डाक्टर को भी तो हम नहीं बुला सकते

"क्या करना चाहिये यह बताओ ?" हरतरन ने बेसब्री से कहा।

इतने ही में मूर्छित व्यक्ति ने जोर २ से सांस लेनी शुरु की। एक युवक बोला—"अब कुछ नहीं हो सकता। हमारा यह वीर भाई जा रहा है, देखो हुचकियाँ आने लगीं।" वह युवक घुटनों के बल बैठ कर रोगी की पट्टी पर सिर रख बालक की भाँति फूट २ कर रोने लगा। सभी के नेत्र भीगे थे। इधर घड़ी ने तीन बजाये और उधर युवक का प्राण पखेरू उड़ गया !!

एक युवक ने कहा—"सरदार अब रोने से क्या होगा? अभी तीन बजा है, अभी काम करना है। साहस करो।"

"अब क्या करना होगा?" हरसरन ने कहा।

"पहिली बात लाश को हटाना है, दाह क्रिया तो सम्भव ही नहीं।"

"जब बहा दिया जाय?"

"यही होगा, पर जमुना जी तक लाश जायगी कैसे?"

"लाश को बक्स में बन्द करना होगा।"

"इस समय बक्स लेकर जाना निरापद नहीं।"

हरसरन बोला—"यह काम दिन में होगा और वह मैं कर लूँगा? दिन में कोई भी देख न पायगा। आप लोग सुरक्षित स्थानों में चले जायँ।"

अब और सुरक्षित स्थान इस समय नहीं है। कल संध्या तक हमें यहीं रहना होगा। मेरे इन मित्रों को संध्या की मीटिंग में भाषण देना है।"

"आज तो सभा बन्दी है, भाषण कैसे होगा?"

"सभा अवश्य होगी और गोलियाँ भी अवश्य चलेंगी।"

"तुम्हें एक काम करना होगा, हरसरन भाई।"

"कहो।"

"सुबह ही भाभी को कुछ दिन के लिये मायके भेजना होगा।"

"यह हो जायगा। उसके साथ असबाब में मैं लाश को भी अनायास ही ले जाऊँगा।"

"आज और कल दिन भर हम यहाँ रहेंगे। कोई ग़ैर आदमी न आने पावेगा। हमारे साथ बहुत सा सामान भी होगा।"

"मैं उस कमरे को खाली किये देता हूँ।"

इसके बाद लाश की उपयुक्त व्यवस्था की गई और ६ बजते २ तीनों युवक घर से बाहर निकले। इसके आधे घंटे बाद ही हरसरन एक बड़ा सा ट्रंक और कुछ सामान ताँगे पर लाद स्त्री और पुत्र सहित एक ओर को चल दिया।

(४)

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"हरसरन दास।"

"इस मकान में रहते हो?"

"जी हाँ"

"क्या काम करते हो?"

"एक फ़र्म में नौकर हूँ।"

"तुम्हारे साथ और कौन है?"

"मैं अकेला हूँ। मेरी स्त्री अपने पिता के घर गई है।"

"मुझे तुम से कुछ बातें करनी हैं।"

तुम्हारे वे दोस्त कहाँ हैं जो तुम्हारे साथ रहते हैं, अजी वही गोरे २ बाबू असल बात यह है कि मैं तुम्हारे उन दोस्त का सहपाठी हूँ। वे और मैं लाहौर में डी० ए० वी० कालेज में एक साथ पढ़े हैं। मैं दिल्ली आया था, सोचा मिलता चलूँ।

हरसरन को विश्वास नहीं हुआ। उसने अन्य मनस्क होकर कहा,

"मुझे कुछ भी मालूम नहीं वे कहाँ हैं।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात है, क्या उनके जल्दी लौटने की उम्मीद भी नहीं है ?"

"नहीं।" इतना कह कर हरसरनदास उठ खड़ा हुआ। उसने कहा,

"मुझे अब काम पर जाना है।"

"आगुन्तुक ने सर्प के समान उसे घूर कर कहा--"तुम्हारे दोस्त किस कोठरी में रहते हैं ? उसे मेरे लिये खोल दो तो मैं उनके आने तक उनकी प्रतीक्षा में ठहर जाऊँ।"

"मेरे पास चाबी नहीं है।"

"मगर उनकी कोठरी कौन सी है ?"

"यहाँ उनकी कोई कोठरी नहीं है।"

"वे यहीं तो रहते हैं।"

"यहाँ वे नहीं रहते।"

"तब कहाँ रहते हैं ?"

"मैं नहीं जानता। अब आप जाइए, मुझे देर हो रही है।"

"आगन्तुक ने हँस कर कहा—"तब तुम मुझे पहचान गये क्यों ?"

"आप कोई हो, मुझे इससे क्या सरोकार है।"

"खैर ! जब जान ही गये हो तो यह बात मैं नहीं छिपा सकता कि मैं घर की तलाशी लूँगा। मकान चारों तरफ़ से घेरा हुआ है, गड़बड़ न करना मैं तुम्हें भी बादशाह के खिलाफ़ साजिश करने वालों में गिरफ़्तार करता हूँ।"

आगन्तुक ने जेब से हथकड़ियाँ और सीटी निकाली। सीटी बजाई और एक कदम आगे बढ़कर हरसरन के हाथ में हथकड़ी डाल दी।

हरसरन ने कहा—"बुरा हो तुम्हारा।"

आगुन्तुक ने अपनी रोबदार घनी काली डाढ़ी में से चमचमाते हुए दाँत निकाल कर हँस दिया और हथकड़ी की चाबी घुमाते हुए बोला—"अब जिसका बुरा भला होना होगा हो जायगा।" इसी समय चार कान्स्टेबिल और पुलिस के एक इंस्पेक्टर कमरे में घुस आए। हरसरन को एक कान्स्टेबिल के सुपुर्द करके आगन्तुक ने इंस्पेक्टर से कहा—"दो चार भले आदमियों को बुलालो मकान की तलाशी ली जायगी।"

हरसरन ने चिल्ला कर कहा—"बुरा हो तुम्हारा।"

शीघ्र ही दस, बीस, पचास आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो गई। तरह २ की बातें और तरह २ की भावभंगियाँ होने लगीं हरसरन हथकड़ियों से जकड़ा हुआ चुपचाप खड़ा था। किसी भी प्रश्न के पूछे जाने पर वह भरपूर वेग से चिल्ला कर कहता था—"बुरा हो तुम्हारा"

तलाशी में बहुत से तेजाब, बम्ब बनाने के खोल, बहुत से कील पुर्जे, तार बेटरियाँ और धातुओं के टुकड़े बरामद हुए। हरसरन से अधिक उत्तर पाने से निराश हो कर पुलिस उसे लेकर दल बल सहित थाने को चली। उस दिन के अखबारों में बम फैक्टरी के भेद उदघाटन की बड़ी लम्बी चौड़ी भूमिका छपी।

(५)

पुलिस की हिरासत में हरसरनदास निर्विकल्प बीज रूप पड़ा था। पुलिस के अफसर आकर नर्मी से पूछते—"क्यों तुम्हें किसी चीज की जरूरत है ? तुम अपना खाना मँगा सकते हो, अपना बिस्तरा मँगा सकते हो, किसी से मिलना चाहो तो मिल सकते हो, पत्र लिखना चाहो तो वह भी कर सकते हो।"

छोटे अफ़सर आकर उनके पास बैठ जाते पूछते, कहो

अब तुम्हारे वे बदमाश दोस्त कहाँ हैं ? जिन्होंने तुम जैसे सीधे सादे गरीब आदमी को फसाया। हम जानते हैं कि तुम बेकसूर हो पर भाई तुम इसके सुराग हो साँस गाँस बताओ तो कुछ पता चले। हमारा काम अपराधियों को पकड़ना है, भले मानसों को सताना नहीं। देखो भाई पुलिस को लोग नाहक बदनाम करते हैं, कि आदमियों को सताती है। क्या तुम्हें कुछ तकलीफ़ है ? तुम चाहे जिससे मिलो, पत्र लिखो खाओ, पत्र कपड़े मंगाओ तुम्हें छुट्टी है।

ये सारी बातें हरसरन मानो पत्थर की मूर्ति की भाँति सुनता हुआ जड़वत बैठा रहता और एकाएक गर्ज कर कहता- "बुरा हो तुम्हारा।" बड़े साहब और छोटे साहब भी यही जवाब पाते। डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट और खान बहादूर को भी यही जवाब था। जमादार इंस्पेक्टर सिपाही सभी को यही जवाबथा, "बुरा हो तुम्हारा।"

इस जड़ पदार्थ से कुछ मतलब हल होगा इसकी आशा किसी को भी न रही। बार २ रिमान्ड लिया गया अन्त में पुलिस असलियत पर आई। एक दिन दो भीमकाय कान्स्टेबिल हवालात में घुस आये। हर सरन दीवार को मुंह किये पड़ा था। कान्स्टेबिलों ने पुकार कर कहा-

"क्यों दोस्त सोते हो या जागते हो ?"

हर सरन ने बिना विलम्ब बिना हिले जुले कहा-"बुरा हो तुम्हारा"

"अरे यार, सिगरेट बीड़ी पीओ, लो।"

हरसरन का वही जवाब था। अब एक ने जोर से ठोकर लगा कर कहा

"साले बुरा तेरा होगा, फाँसी जब चढ़ेगा। खड़ा हो।" दूसरे कांस्टेबिल ने उसकी गर्दन पकड़ कर अनायास ही उसे उठादिया और कहा, किसका बुरा हो? सीधा बैठ और जवाब दे, यार लोग कहाँ २ हैं और कौन कौन हैं?"

हरसरन चुपचाप बैठ गया। दोनों कान्सटेबिलों ने उसे भरपूर मार दी। इस बार उसने अपना वह पेटेन्ट शब्द भी उच्चारण करना त्याग दिया। वह चुपचाप निर्जीव मांस के लोथड़े की भाँति तमाम मार चुपचाप सह गया। इसके बाद उसके दोनों हाथ चारपाई के नीचे दबा कर दोनों कान्स्टेबिल उस पर बैठ गये और भाँति २ के प्रश्न पूछने लगे। वेदना से उसकी आखें निकलने लगीं प्यास से कण्ठ लटपटा गये। धीरे २ सारा दिन व्यतीत हो गया। भूख प्यास नींद और वेदना सभी ने उसके साधारण क्षुद्र शरीर पर पूर्ण वेग से आक्रमण किया। पर क्या शंकर की आत्मा उस पर अवतीर्ण हुई, या कोई पिशाच उसे सिद्ध था वह निर्लेप निर्विकार उस बेदना को बिना एक बार उफ किये सहन कर

रहा था जब नींद के झोंके आते, वे दोनों राक्षस उसके कान या गर्दन पकड़ कर झकझोर डालते, उसके नाखूनों में पिन चुभाते, उसके मलद्वार में लकड़ियाँ घूँसते; गाली और साधारण मार की तो चर्चा करने की आवश्यकता ही नहीं।

एक रात भी बीती और एक दिन भी। कान्स्टेबिल बदलते गये जो आते वे सोडा चाय बर्फ मिठाई उड़ाते और अट्टहास के साथ उसका उपहास करते।

अन्तत; पुलिस हार गई। उसे जो कुछ भी प्रमाण मिल सके उसे लेकर केसका चालान कर दिया। २१ दिन तक भयानक यन्त्रणा और पीड़ा को भोग कर उस रोख नर्क के सामान हवालात से वह अर्द्ध मूर्छितावस्था में बाहर निकाला गया। उसका शरीर गिर पड़ता था-पर उसे पकड़ कर मोटर लारी में बिठाया गया और वह जिला मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मार से उसका होठ, सूज गया था। और आँख के पास घाव हो गया था। छाती और पीठ पर मार के अनगिनत निशान और सूजन थी। दो कान्स्टेबिलों ने उसे घसीट कर मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा किया।

मजिस्ट्रेट ने पूछा–"तुम्हारा नाम?"

"- - —— —— - -"

"क्या यह गूँगा है या बीमार है!" मजिस्ट्रेट ने कोर्ट

इंस्पेक्टर से पूछा।

"हजूर यह पूरा मक्कार और मगारा है।"

मजिस्ट्रेट ने उससे फिर पूछा—

"तुम्हें कुछ कहना है, कुछ शिकायत है ?"

हरसरन ने एक बार मजिस्ट्रेट की ओर सिर उठा कर देखा और चिल्ला कर कहा—"बुरा हो तुम्हारा !"

मजिस्ट्रेट ने गंभीरता पूर्वक कुछ लिखा और उसे जेल में भेज देने की आज्ञा प्रदान की। हरसरन एक नर्क से दूसरे नर्क में गया।

"टिक, टिक, टिक !!"

"टिक, टिक, टिक !!!"

हरसरन ने काल कोठरी में पड़े २ एकाएक सुना-बगल की किसी कोठरी से शब्द आ रहा है।

"टिक, टिक, टिक।"

"टिक, टिक, टिक।"

वह उठ कर बैठ गया। काल कोठरी में बन्द हुए उसे आज सातवाँ दिन था। इस बीच में उसे केवल एक बार मनुष्य की सूरत देखने को मिलती है जब वह शौचादि के लिये २० मिनट के लिये कोठरी से बाहर निकाला जाता है। पर मनुष्य का कण्ठ स्वर उसने सुना ही नहीं, वह ध्यान से सुनने लगा।

ठहर ठहर कर कोई दीवार ठोक रहा था। कुछ देर ध्यान से सुन कर हरसरन ने भी उँगली से ठोका।

"टिक, टिक, टिक !!"

उधर से आवाज़ आई, "क्या तुम भी कोई कैदी हो?" हरसरन के मुख पर उसके स्वाभाविक शब्द आये होठ फड़के पर उसने उन्हें रोक कर कहा—"हाँ, और तुम?"

"मैं भी, मुझे खड़ी बेड़ी दी गई हैं। क्या तुम किसी राजनैतिक मामले में हो?"

"हाँ और तुम?"

"मैं भी, तुम्हारा नम्बर?"

"३० और तुम्हारा?"

"१८, क्या तुम्हें बाहर का कुछ समाचार मिलता है?"

"नहीं और तुम्हें?"

"मुझे मिलता है, मैंने चालाकी से काम लिया है। तुम कब से इस कोठरी में हो?"

"नौ दिन से, और तुम?"

"मुझे चौथा दिन है, चुप कोई आता है।"

"तुम्हारा भला हो।"

हरसरन चुप हो गया।

आधीरात बीत गई। जेल में सन्नाटा था, हरसरन मच्छरों

और जुओं एवं और दुर्गन्ध से तंग छटपटा रहा था। शब्द हुआ—

"टिक्, टिक्, टिक्"

"तुम्हारा नम्बर ?"

"१८, और तुम्हारा ?"

"३०, क्या अभी तक जागते हो ?"

"हाँ, कोई नई खबर है ?"

"मुझे तुम्हारा नाम मालूम हो गया है, क्या तुम्हें पीटा भी जा रहा है !"

"हाँ"

"कल जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल का मुआयना करेंगे, उनसे शिकायत करना।"

"शिकायत करना मैं अपमान समझता हूँ।"

"फिर चुपचाप कब तक सहोगे !"

"जब तक ये कष्ट देंगे।"

"एक और खबर है।"

"क्या ?"

"तुम्हारी स्त्री आई है।"

"ऐं ? कब !"

"कल। वह तुम्हें ज़मानत पर छुड़ाने की चिन्ता में है।"

"सच ?"

"हाँ सुनो ?"

"कहो ?"

"मुलाकात करोगे ?"

"किससे ?"

"अपनी स्त्री से।"

"कैसे होगी ?"

"मैं करा दूँगा।"

"तुम ?"

"अफ़सर जेल को मैंने चाँदी के टुकड़ों से वश में कर लिया है।"

"छी, ऐसे थे तो जेल क्यों आये ?"

"तब लोग तुम्हारी तरह लोहे के कैसे बनेगे दोस्त ?"

"मैं मुलाकात नहीं करूँगा।"

"सुनो"

"कहो।"

"कल शिकायत ज़रूर करना।"

"हरगिज़ नहीं।"

इसके बाद हरसरन ने कहा—"सुनो"

उधर से जवाब नहीं आया। हरसरन ने संकेत किया, टिक, टिक, टिक। उसका उत्तर नहीं। आया। वह चुपचाप

आकर फिर कम्बल पर पड़ गया।

दिन निकल आया। जेल वार्डर गश्त लगा कर चला गया। शब्द हुआ।

"टिक् टिक् टिक्"

"हरसरन ने दौड़ कर शब्द किया–टिक् टिक् टिक्"

"१८ ?"

"हाँ, क्या ३० ?"

"हाँ"

"क्या तुम्हें कोई नई सूचना मिली है ?"

"नहीं, तुमने कुछ सुना है ?"

"बहुत कुछ मगर साहस न खोना।"

"कहो मैं सुनने को तय्यार हूँ।"

"तुम्हारी स्त्री ने सब बता दिया है।"

"क्या ? ? ?

"उत्तेजित न हो-क्या तुम इस भेद से अनभिज्ञ हो ?"

"कौनसा भेद ?"

"मैं उस भेद की बात नहीं कहता जिस मामले में हम यहाँ आये हैं।"

"किस भेद की बात कहते हो ! बोलते क्यों नहीं ?"

"तुम्हारी स्त्री और दोस्त के गुप्त प्रेम का भेद।"

"दुष्ट, कुत्ता"

"गाली बकने से क्या होगा ! बहुत सी बातें मालूम हुई हैं"

"कौन बातें !"

"तुम्हारे बच्चे की बात।"

"उसकी क्या बात मालूम हुई ?"

"उसे तुम्हारा दोस्त क्यों इतना प्यार करता है, जानते हो ?"

"क्यों नहीं, वह उसे अपने बच्चे के समान ही समझता है।"

"समझता नहीं है, वह उसी का बच्चा है।"

"झूठे, बेईमान पाजी ? दूर हो मैं तुम से बात न करूँगा।"

"फिर बातें कैसे खुलेंगी, मैंने कहा था आपे से बाहर न होना।

"तुम धूर्त्त झूठे और बेईमान हो।"

"क्या सबूत देखोगे ?"

तुम्हारा बुरा हो। दूर हो तुम"

हरसरन दीवार के पास से हट आया। कई बार खट खट हुई पर व्यर्थ। हरसरन ने फिर उधर ध्यान नहीं दिया। उसके बदन में आग सी लग गई। हे ईश्वर ! क्या यह सच है ? वह सीधा सादा युवक तेज और त्याग का मूर्ति मान अवतार, पवित्र जीवन और तपस्या का धरी क्या ऐसा कुकर्म करेगा

मैंने अपनी ज़मीन जायदाद मिट्टी में मिलाई घर द्वार छोड़ उसके लिए अधम नौकरी की इसलिये कि मैं उसके त्याग पर देशप्रेम पर मोहित था। वह देवदूत की भाँति बोलता था। स्वर्गीय प्रभा उसके नेत्रों में थी। मैं मूर्ख क्या उसके लिये इतना भी न करता। वह देश की सेवा में संलग्न था, मैंने अपने को उसकी सेवा में संलग्न किया। वह देश के लिए सर्वस्व त्याग चुका था और मैंने उसके लिये सर्वस्व त्यागा, सो क्या इसीलिये? नहीं, नहीं, ऐसी बातें सोचना भी पाप है। सर्प देवता हो सकता है पर देवता सर्प नहीं हो सकता। उसका पुत्र? रामराम, क्या मेरी स्त्री व्यभिचारणी की आँखें ऐसी होती हैं? व्यभिचारणी क्या इस तरह हँसा करती है? ऐसी तत्पर और निसंकोच होती है? ईश्वर! मैं क्या सोच रहा हूँ। आज मैंने समझा कि मेरी आत्मा कितनी पापी है। हाँ, यह हो सकता है कि वह मुझसे हज़ार गुना अधिक उसे प्यार करती हो। वह इस योग्य है। पर वह प्यार क्या अपवित्र ही हो सकता है? उसका पुत्र? उसका पुत्र?? हरसरन ने अपने सिर में ५—७ घूँसे मारे। उसने कपड़े फाड़ डाले और वह भूमि पर लोटने और तड़पने लगा। इसके बाद वह दीवार के पास गया, टिक् टिक् टिक् शब्द किया। एक बार दो बार तीन बार, पर कुछ भी उत्तर नहीं आया। वह तड़पती हुई मछली की भाँति भूमि में पड़ा

बिलखता रहा। उसने आघातों से शरीर को क्षत विक्षत कर लिया। इसी भाँति मर्म वेदना में उसकी रात्रि व्यतीत हुई। दिन आया और गया। खाना पीना भी उसने छोड़ दिया। वह सैंकड़ों बार दीवार के पास गया टिक् टिक् किया पर कुछ भी उत्तर न प्राप्त हुआ। अब वह दीवार से सिर टकराने और ज़ोर २ से चिल्लाने लगा। तीन दिन बीत गये। हरसरन चुप चाप धरती पर पड़ा था शब्द हुआ "टिक टिक टिक"

वह भूखा प्यासा अधमरा हरसरन, सिंह की भांति झपटा। उसने तनिक उत्तेजित स्वर में कहा।

"तुम हो १८ नम्बर ?"

"हाँ, ईश्वर का धन्यवाद है तुम यहीं हो। क्या तुम्हें भी कोई सज़ा मिली ?"

"नहीं, तुम कहाँ थे ?"

"खड़ी बेड़ी पर लटका दिया गया था।"

"क्यों ?"

"तुमसे बातें करने और खबर मंगाने के अपराध में।"

"पर तुम झूठे हो।"

अभागे भाई, मालूम होता है तुम्हारा दिमाग़ खराब हो गया है।"

"तब सबूत दो।"

"सबूत पीछे लेना पहले नई खबर सुनलो।"

"नई खबर क्या है ?"

"वे दोनों आज रात पकड़े गये हैं।"

"कौन दोनों ?"

"तुम्हारी स्त्री और मित्र"

"फिर वही बात ? दुष्ट !"

"वे दोनों रात को एक ही कमरे में थे।"

"तुम्हारा नाश हो।"

"तुम्हारी स्त्री ने पुलिस को सँकेत करके बुला लिया।"

"झूठे बेईमान।"

"वह पुलिस से मिल गई है। पुलिस ने उसे बड़ी रक़म दी है।"

"नीच, पाजी, चुप रहो।"

"अभागे भाई ! शोक है तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है। तुम्हें बड़ी मर्म वेदना हो रही है।"

"सूअर, मैं तुम्हें देखते ही मार डालूँगा।"

"कुछ चाहते हो ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ मंगाना चाहते हो ?"

"कुछ नहीं"

"अब शायद हमारी मुलाकात नहीं होगी।"

"क्यों ?"

"मैं आज ही रात को दूसरी जगह भेज दिया जाऊंगा, ऐसा प्रतीत होता है।"

"और सबूत ?"

"सबूत देखना चाहते हो। ?"

"नहीं, कदापि नहीं, जाओ, मुलाकात की कुछ ज़रूरत नहीं है।"

हरसरन वहाँ से हट आया। दो तीन बार टिक् टिक् टिक् शब्द हुआ। हरसरन ने वहाँ कान नहीं दिया। वह दोनों हाथों पर सिर रख कर औंधे मुँह पड़ रहा। वह कुछ सोच रहा था। उसके मस्तिष्क में सारे शरीर का खून इकट्ठा हो गया था। वह मानो जेल की छत, आकाश, स्वर्ग, सूर्य मण्डल, ब्रह्माण्ड सभी को भेदन करके ऊँचा, और ऊँचा उड़ा चला जा रहा था। दिन निकल आया। पर हरसरन उसी दशा में पड़ा रहा। उसके कपड़े फट गये थे और शरीर क्षत विक्षत हो गया था। उसने तीन दिन तक कुछ खाया न था।

वह दिन भर यों ही पड़ा रहा। बीच में डाक्टर और जेल के अधिकारी उसे देखने आये। वह किसी से भी कुछ न बोला

धीरे २ रात हुई और वह क्रमशः गम्भीर होती गई। फिर ध्वनि आई—"टिक टिक टिक"

हर सरन झपट कर वहाँ जा पहुँचा।

"तुम झूँटे लवार, दुष्ट।"

"आह, क्या तुम्हारा सिर बिल्कुल फिर गया है। शान्त हो भाई, बहुत बुरी खबर है, क्या तुम्हें देखने डाक्टर नहीं आया ?"

"कौन सी खबर है, कहो, कहो ?"

"वह कहने योग्य नहीं।"

"कहो, अरे दुष्ट कहो।"

"मैं तुम्हारी गालियों का बुरा नहीं मानूँगा। ईश्वर तुम्हें शान्ति दे, क्या तुम इस खबर को सुन सकते हो ?"

"कह, अरे पाजी कह।"

"उसने स्वीकार कर लिया।"

"किसने ?"

"तुम्हारे मित्र ने।"

"क्या ?"

"कि वह तुम्हारी पत्नी का जार है और वह उसकी रखेली है।"

"उसका नाश हो, अब चुप रहो।"

"सुनो एक बात कहता हूँ।"

"कुछ कहने की जरूरत नहीं है, भागो यहाँ से।"

"सुनो भाई, मैंने एक निश्चय किया है। अब मैं नहीं सहन कर सकता, मैं अभी चला जाऊँगा। फिर अब मुलाकात नहीं होगी।"

"जाओ जहन्नुम में। तुमने क्या निश्चय किया है?"

"वही तुम भी करो। विश्वास घाती को मज़ा चखादो।"

"क्या ? क्या ??"

"मुखबिर हो जाओ।

"हरामी, विश्वास घाती, दूर हो।"

"तब फाँसी पाओ। जिस ने तुम्हारे जैसे मित्र विश्वासी की स्त्री को बिगाड़ा, धोखा दिया उसे, तुम्हारी जगह मैं होता तो अवश्य फाँसी पर लटकवाता।"

"अरे झूँटे दूर हो।"

हरसरन वहाँ से लौट आया। कुछ ही देर बाद उसने शब्द किया "टिक् टिक् टिक्"। कोई भी उत्तर नहीं आया। वह अब बड़ी तेजी से उस छोटी सी दुर्गन्धित कोठरी में चक्कर काटने लगा। उसकी आँखें फटी पड़ती थी। मुट्ठियां बन्द थीं और वह दाँत मिसमिसा रहा था। वह जोर २ से पैर पटकता

फिरता था। एक बार गत १० वर्ष का जीवन चित्रपट की भांति उसकी आँखों के सामने फिर गया—कैसे उसका विवाह हुआ था; उसने कैसे अपने मित्र से अपनी पत्नी की भेंट कराई थी; वे दोनों कितना शीघ्र घुलमिल गये; घंटो बैठे गप्पें लड़ाते थे। मैं काम पर जाता वे दोनों घर रहते। क्या यह सम्भव हो सकता है कि दोनों में बुरा सम्बन्ध हो ? फिर जब बच्चा हुआ तो कहा करती थी कि इसकी सूरत तुम्हारी जैसी नहीं तुम्हारे मित्र के जैसी है। क्यों ? बच्चे ?? क्यों ??? हाय यह मैंने कभी नहीं सोचा, सदा हँस कर टाल दिया। आज अब इसे समझ ही कर रहूँगा। उसकी सूरत उस के समान क्यों है ? और क्यों वह यह बात बार २ कहा करती थी और क्यों वह उसे सदा इतना प्यार करता था ?? ठहरो मैं अभी इसका मूल कारण समझ लूँगा। इतना कह कर वह जोर २ से सिर में और छाती में घूँसे मारने लगा। इसके बाद उसने दीवार में टक्करें मारनी शुरू की और फिर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश में आने पर वह कुछ क्षण चुपचाप पड़ा रहा। फिर उठ कर उसी बेचैनी और घबराहट में टहलने लगा। अब वह बड़ बड़ा रहा था—मैं उसे मार डालूँगा और उसे भी। मैं सभी को मार डालूँगा। विश्वास घाती, वंचक—चोर !!! इस बार उसने बड़े वेग से अपने शरीर को चीर कर कई घाव कर

लिये। अब वह दीवार के पास जाकर टिक् टिक् टिक् शब्द करने लगा। पर उत्तर नहीं मिला। इसके बाद वह दीवार पर मुख रख कर ज़ोर २ से चिल्लाने और दीवार पर घूँसे मारने लगा। वार्डर और जेल अधिकारियों के बहुत चेष्टा करने पर भी उसके भाव में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। दिन समाप्त हुआ और रात्रि आई। वह उसी भाँति दीवार में घूँसे मारता और चिल्लाता रहा। वह बारम्बार ३० नम्बर को गालि देता था।

रात ज्यों २ ढलने लगी, वह शिथिल होता गया। अन्त में वह बेहोश होकर गिर पड़ा। वह इस बार खूब सोया।

धूप चढ़ गई। दोपहर हो गया। हरसरन उठ कर बैठ गया। कुछ देर वह सोचता रहा। इस समय वह बहुत सौम्य स्थिर और गम्भीर था। उसने एक बार सापेक्ष दृष्टि से चारों तरफ़ देखा। फिर वह बड़ी देर तक उस दीवार की तरफ़ देखता रहा। एक बार वह उठ कर दीवार की ओर चला भी। पर बीच ही से लौट आया। इस बार उसने वार्डर को पुकार कर कहा, "अभी इसी वक्त बड़े साहब के पास मुझे ले चलो मैं मुखबिर होऊँगा।"

७

जेल में हलचल मच गई। फोन पर फोन होने लगे। अधिकारी वर्दियाँ कसने लगे। वार्डर और सिपाही चुस्ती से नाकों

पर खड़े हो गये। तमाम कैदियों को अपने २ बारक में बन्द होने का हुकम दे दिया। रास्तों और दर्वाजों की सफाई की जाने लगी। कुछ ही देर में पुलिस के उच्चाधिकारी, मजिस्ट्रेट और जेल सुपरिन्टेन्डेन्ड की मोटरें जेल के फाटक पर आ लगीं। भूखा, नँगा, पागल और सर्वाङ्ग में क्षत विक्षत हरसरन बाहर निकाला गया। वह चल नहीं सकता था। दो सिपाही उसे सहारा देकर लाये। आफिस में आकर वह गिर गया। उसे होश में लाया गया। डाक्टर ने कुछ शक्ति बर्धक दवा दी। जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उसे कुर्सी पर बैठाया। धीरे २ होश में आकर उसने चारों ओर देखा। वह कुछ बड़ बड़ा रहा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा—'क्या तुम सरकारी गवाह बन कर शाही क्षमा चाहते हो ?"

"मैं मुखबिर बना चाहता हूँ। मुखबिर।"

"क्या तुम बयान दे सकते हो ?"

"तुम लोग क्या चाहते हो ?"

"हम लोग तुम्हारा बयान लेना चाहते हैं।"

"क्या तुम उसे फाँसी दे दोगे ?"

"यह बात तो कानून के हाथ में है।"

"उसे फाँसी दे दो।"

"तुम जो कुछ जानते हो सब सच २ बयान कर दो।"

"मुझे क्या मिलेगा ?"

"क्षमा, तुम्हें क्षमा, कर दिया जायगा।"

हरसरन के होठों पर हँसी आई। उसने कहा—मेरे पास एक सबूत है उससे सब काम सिद्ध हो जावेंगे। मुझे घर ले चलो मैं तुम्हें एक ऐसी चीज़ दिखाऊँगा जो कभी किसी ने न देखी होगी।"

अधिकारी गण ने परामर्श किया। पुलिस का दल तैयार किया गया सभी उच्चाधिकारी साथ चले। मुहल्लों में सन्नाटा छा गया। लोग भीत चकित दृष्टि से इस प्रबल दल को देखने लगे। घर में ताला लगा था। उसे तोड़ डाला गया। घर के भीतर जाकर हरसरन पागल की भाँति जल्दी २ घर में घूमने लगा। एक बार वह पलँग पर लेट कर हँसने लगा। दूसरी बार उसने आल्मारी की दराज़ खोल कर उसमें से एक बढ़िया कोट निकाल कर पहन लिया पर तत्काल ही उसे फैंक दिया।

अधिकारी सतर्क होकर उसकी चेष्टा देख रहे थे। पर किसी ने भी उसकी चेष्टा में कोई बाधा नहीं दी। वह इधर उधर घूम २ कर हँसता, कभी बड़ बड़ाता और कभी इधर की चीजें उधर फैंकता रहा। इसके बाद वह अपनी पत्नी और पुत्र की तस्वीर के सामने जा खड़ा हुआ। इस बार वह फूट फूट कर रोने लगा। उसने तस्वीर को छाती से लगा लिया, वह बहुत रोया।

अन्त में एक अधिकारी ने कहा—"जिस काम के लिये थे, उसका भी तो ख्याल रखो। वह सबूत ?"

'हाँ, वह सबूत।" उसने तस्वीर दूर फैंक दी और वक्र दृष्टि से बड़ी देर तक अधिकारी को घूरता और बड़ बड़ाता रहा। फिर उसने कहा—"अच्छी बात है. तब तुम उसे फाँसी दोगे ? अब मैं तुम्हें सबूत देता हूँ। और ऐसा सबूत देता हूँ जो किसी ने नहीं दिया होगा। मैं अब मुखबिर हूँ।"

इसके बाद उसने एक आलमारी का ताला तोड़ डाला और उसमें से एक छोटी सन्दूकची निकाली। अधिकारी सतर्क हो गये। क्या आश्चर्य है पिस्तौल या बम से हमला कर दे : बक्स को तोड़ कर हरसरन ने एक छोटी सी शीशी निकाली और उसे अधिकारियों को दिखाते हुए कहा—

"यह बड़ा भारी सबूत है। मैं अभी तुम्हें दिखा दूँगा कि इस में क्या करामात है। तुम लोग अपनी २ जहग पर खड़े रहो। इतना कह कर देखते ही देखते उसने शीशी को मुँह में उँडेल लिया और शीशी फेंक दी।

अधिकारीगण अब समझे और एक दूसरे का मुँह देखने लगे। हरसरन हँसने लगा। हँसते २ कहा, 'बुरा हो तुम्हारा, तुम क्या मुझे यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि उसने मेरी स्त्री को कुमार्गामिनी बनाया। सम्भव है। पर उसने ऐसा किया

भी हो तो मैं उसे क्षमा करता हूँ वह देश का प्यारा पुत्र है। मैंने सब कुछ उसे दिया तो स्त्री पुत्र भी सही इसके बाद उसका सर्वाङ्ग काँपने लगा और वह वहीं धरती पर गिर पड़ा। अभी तक उसे होश बाकी था। एक अधिकारी ने आगे बढ़ कर कहा "यह तुमने क्या किया ?"

"प्रायश्चित ! क्यों कि कल रात से मैं उसे विश्वासघाती समझने लगा था जाओ तुम्हारा बुरा हो।"

इसके कुछ क्षण बाद ही उसके प्राण पखेरू उड़ गया।

वारंट

—:❀:—

मई-महिने की बात है। देश में तीन वाक्य मूर्तिमान्-से लहरा रहे थे--'इन्क़लाब ज़िंदाबाद,' भगतसिंह ज़िंदाबाद,' 'नमक-क़ानूनतोड़दिया' इनमें से दो बातें तो सिर्फ़ ज़बानी जमा-खर्चथी, तीसरी अमल में आ रहीथी। गाँवगाँव कड़ाह चढ़े थे, पानी उबल रहा था, नमक बन रहा था। नमक नहीं बन रहा था, नमक-क़ानून तोड़ा जा रहा था। यों जो नमक बनता था, वह जान और आबरू के मोल का था।*

दिल्ली और शाहदरे के बीच के जमना का कछार है, उसमें भट्ठी बनी थी। शाहादरे के खारी पानी का उस में श्राद्ध हो रहा था। अनेक पुरुष श्वेत खद्दर की राष्ट्रीय वर्दी डाटे और महिलाएँ केशरिया बाना धारण किए क़ानून तोड़ने में जुटी थीं।

---

* राजनैतिक बवंडर में बहुत से असली और फसली नेता उत्पन्न हो गये थे। इस कहानी में ऐसे ही एक फसली नेता का रेखा चित्र है।

लार्ड इरविन का ज़माना था। मृदु दमन में लाठी-चार्ज का शस्त्र आविष्कार हो चुका था। शक्तिशाली लार्ड इरविन की सरकार जिन सैनिको के लिये प्रतिवर्ष ६२ करोड रुपया खर्च करती है उन्हें अफीम की पीनक में ऊँघता छोड़, तोप, बंदूक, मशीनगन, बम आदि को वक्त-बेवक्त के लिये सुरक्षित रख, लाठी का स्वाद इन कानून-तोड़ स्त्री-पुरुषों को चखा रही थी। बुद्धिमान अँगरेज़ दूसरों की तबियत को फौरन समझ जाते हैं, और भारतीयों को लाठी ही प्रिय है, इसलिये लाठी-चार्ज ही अमल में लाया जा रहा था। मालूम होता है उन्हें चकबस्त की वह बात याद थी, जो उन्होंने एक बार महायुद्ध के अवसर पर जर्मन से कही थी—

"जर्मन, तेरी तोपों में हम बाँस चला देंगे।"

बस, उधर नमक-कानून टूट रहा था, इधर केस चलाए जा रहे थे। इस शुद्ध स्वदेशी युग में, शुद्ध खद्दरधारियों पर, शुद्ध भारतीय बाँस की शुद्ध लाठियाँ जब-तब अहिंसा-वृत्ति से बरसाई जाया करती थी। ऐसे ही गुनगुने वे दिन थे।

(२)

संध्या के समय कोई डेढ़ पाव नमक बनाकर-कड़ाही-कलछुल, कोरे बरतन वालिंटयर लोगों के कंधे पर लादे माहमान्य लीडरगण अपने चप्पलों को अंग्रेजों की बनाई तारकोल की चमचमाती सड़क पर चप-चप चलाते, सिंह का-सा सीना

उभारे, पान कचरते, मठोलियां मारते, धरती में भूकंपउद्‌यकरते शहर को लौट रहे थे। जमना के पुल के उस पार देखा एक लारी पर कोई १०-१५ कांस्टेबिल, लाल-लाल पगड़ियाँ सिर डाटे बड़ी-बड़ी लाठियाँ कान से ऊंची किए, बीच सड़क में खड़े हैं। सब के आगे कलाबत्तू के भव्वे की खाकी पगड़ी पहने, चुस्त वर्दी कसे इंस्पेक्टर साहब भी डटे हुए हैं।

जैसे अचानक साँप को देख कर बालक डर जाय, उसी भाँती वह लीडरों, लीडरानियों और स्वयंसेवकों की पार्टी एकबारगी स्तंभित हो गई। जिनके मुंह में पान था, वह मुंह में रहा। डिक्टेटर साहब एक अखबार के एडीटर थे। एडीटर तो हुए थे पेट के लिये, पर एडीटर को लीडर और लीडर एडीटर को डिक्टेटर बनना अनिवार्य होना ही चाहिए, इसलिये एडीटर उर्फ लीडर उर्फ डिक्टेटर सबसे आगे साथ थे। परंतु इसलाल भंडी कोदेखते ही उनकी सब टर्र हो गई। कानून-तोड़ रेलगाड़ी वहीं स्टाप हो गई। सब एक दूसरे का मुंह देखने लगे। वे आँखों में कह रहे थे --"-पुलिस-जेल -पुलिस-जेल।" एक महिला ने आगे बढ़कर दर्प से कहा-"भाईयो, डरने की क्या बात है, आगे बढ़ें अगर ये हमें गिरफ्तार करने आए हैं, तो चलिऐ, हम गिरफ्तार होंगे।"

पार्टी में गर्मी आई। पहले धीरे धीरे, पीछे स्वाभाविक गति से पर्टी की पार्टी आगे बढ़ी। निकटआने पर इन्स्पेक्टर

ने सबको ठहरने का संकेत किया। फिर वह मोटर की छत पर चढ़ गया, और वहाँ से उसने एक काग़ज़ में से कुछ लोगों के नाम सुना कर कहा—"इन के नाम वारंट हैं। इन में से जो हाज़िर हों, वे थाने में पहुँच जायँ।" सुनकर भीड़ ने तीनों पेटेंट नारे बुलंद किए।

डिक्टेटर साहब ने अपना नाम लिस्ट में न सुनकर संतोष की साँस ली; फिर ज़रा रुआब से आगे बढ़कर बोले—

"क्या मैं जान सकता हूँ कि मेरा नाम इस लिस्ट में क्यों नहीं ?'

इन्स्पेक्टर ने मुस्किरा कर कहा—'मैं अफ़सरों से पूछ कर बता सकता हूँ।"

"मगर मैं इन सबके साथ जाऊँगा।"

"वहाँ बिना बुलाए मेहमानों के लिये जगह नहीं है" इन्स्पेक्टर हँसा, और दल-बल सहित चला गया।

पार्टी क्षण-भर चकित रही। फिर नारे लगाए, और आगे बढ़ी। डिक्टेटर साहब ने पूछा—"तो क्या आप लोग थाने जाकर गिरफ़्तार होंगे ?"

"अवश्य, हम लोग थाने जा रहे हैं।"

"और मैं ?"

"आप हमें पहुँचाकर आफिस जाँय, दूसरा बैच तैयार कर कल यहाँ आकर फिर नमक बनाएँ।"

इसके बाद पार्टी ने सफ़ बनाई, और देश भक्ति के गीत गाती कोतवाली की तरफ़ चली। नगर-निवासियों की भीड़ उसके साथ थी कौमी नारे आसमान और धरती दहला रहे थे।

कोतवाली के फाटक पर पहुँचकर दल रुकका। पुलिस इंस्पेक्टर ने डिक्टेटर साहब से कहा—

"अब आप क्या चाहते हैं ?"

"हम गिफ़्तार होना चाहते हैं।"

"मगर आपका वारंट तो है नही"

"मैं नहीं जानता, मैं गिरफ़्तार हूँगा।"

"तब आप कुछ बोलिए—भाषण दीजिए।"

"मैं भाषण नहीं दूँगा।"

"तो फ़िलहाल आप घर जाइए।"

इंस्पेक्टर ने अपने आसामियों को अंदर किया।

और, डिक्टेटर साहब इन्क़लाब के नारों में तैरते हुए घर पहुँचे। दूसरे दिन उन्हीं के अख़बार में उनकी वीरता, साहस आदि के बखान के साथ ही उनका फ़ोटो भी छपा था।

(२)

इसके तीन दिन बाद। डिक्टेटर साहब कांग्रेस-ऑफ़िस में

बैठे थे, इर्द-गिर्द लीडर और लीडरनियाँ थी भीं। बहुत-सी बातें हो रही थी, टर्र साहब की उस दिन की हेकड़ी की चर्चा जोरों पर थी।

एक ने कहा—"कमाल किया आपने। जब आप शेर के समान सीना तान कर उनके सामने खड़े हुए, तो देखते बनता था।"

दूसरी एक महिला बोली—"क्यों नहीं, मगर उसे इन पर हाथ उठाने की जुर्रत न हुई।"

तीसरे महाशय बोले—"क्या कहने हैं आपके! नोक झोंक भी वह थी कि वाह! पट्ठा कहने लगा, भाषण दो।"

डिक्टेटर महाशय उँगलियों को पोर से सामने की टेबुल को ठक-ठक करते हुए कहने लगे—"मैं तो कौम का एक अदना खिदमतगार हूँ। मैं किस लायक हूँ।"

टन्-टन्-टन् फोन की घंटी बजी। टर्र साहब ने फोन उठा कर कहा—"हलो, कौन है?"

"मैं पुलिस-थाने से बोल रहा हूं।"

टर साहब ने आँखें कपार पर चढ़ाकर कहा—"पुलिस थाने से?"

मित्र-मंडली ने चमक कर पूछा—"क्या पुलिस थाने से?"

"जी हाँ आप प्रसाद डिक्टेटर हैं न?"

"हाँ हाँ, मैं डिक्टेटर हूँ साहब ।"

"तो आपका वारंट है ।"

"वारंट !" डिक्टेटर साहब का चेहरा सफ़ेद हो गया। मित्र-मंडली ने उत्तेजित होकर कहा—वारंट ?"

"जी हाँ, वारंट है, आप क्या चाहते हैं ? आपको गिरफ़तार करने हम लोग वहाँ आवें, या आप स्वयं गिरफ़तार होने थाने में तशरीफ़ ला रहे हैं ।"

"थाने में ?" धीमे स्वर से टर्र साहब के मुँह से निकल गया। उन्होंने थूक सटककर मित्रों से पूछा—

"कहिए, आपकी क्या राय है ? वे पूछते हैं, थाने में मैं आ रहा हूँ, या वे लोग गिरफ़तार करने यहाँ आवें ?"

सब लोग चीखकर बोले—"हम लोग आपका जुलूस बनाकर ले चलेंगे। उनसे कह दीजिए, उन्हें अपने मनहूस क़दम यहाँ लाने की ज़रूरत नहीं ?"

टर्र साहब ने फोन पर मुँह लगाकर कहा—"मैं सिर आँखों पर थाने आ रहा हूं"

फोन खट से रख दिया गया। मित्रों में स्फूर्ति आ गई। एक महाशय ने उछलकर फोन उठा लिया, और दनादन नगर के १०-२० मुख्य-मुख्य ठिकानों को फोन कर दिया। देखते-देखते आफिस के बाहर आदमियों की भीड़ लग गई। इन्क़िलाब जिंदाबाद' के नारों से आस-पास के मकान हिल गए।

वालंटियर लोग साफ़ा बांधकर खड़े हो गए। महिला-मंडल केशरिया बाना धारण किए, राष्ट्रीय गान गाता आ धमका। बड़ा-सा कौमी झंडा झूलने लगा।

टर्र साहब के घर की स्त्रियों ने उनकी निकासी बड़ी तैयारी से उसी भांति की जिस भांति दूल्हे की घुड़चढ़ी होती है। उन्हें नहलाधुलाकर बढ़िया वस्त्र पहनाए गए। दही-रोरी का तिलक लगाया, और फूलों का हार गले में पहनाया।

सज-धजकर डिक्टेटर साहब जब बाहर आए, तो वज्र-गर्जन की भाँति तीनों नारे बुलंद हुए। एक बढ़िया मोटरकार लोग मांग लाए थे, उसे फूलों से सजा दिया गया था। टर्र साहब धर्मपत्नी-सहित उसमें बैठे, और हज़ारों स्त्री पुरुषों के जुलूस के साथ पुलिस-कोतवाली की ओर चले।

(४)

ज्यों ही जुलूस निकलकर बाज़ार में आया, खटाखट बाज़ार की दूकानें बंद होने लगीं। पूरी हड़ताल हो गई। थाने तक पहुँचते पहुँचते जुलूस ५ हज़ार आदमियों का हो गया।

थाने के फाटक पर जुलूस रुका। थानेवाले चौकन्ने हो गए। पुलिस के जवानों ने लाठियां सँभालीं। टर्र साहब फूलमालाओं से लदे हुए मोटर से उतरे। चुने हुए लीडरों के साथ डिक्टेटर साहब शान से अकड़ते हुए थाने में घुस गए। भीड़

सहित स्वयंसेवक दल बाहर 'इन्कलाब जिंदाबाद' के नारे बुलंद करता रहा।

थानेदार साहब बैठे जरूरी कागजात देख रहे थे। डिक्टेटर साहब और लीडर साहबान को इस शान से आते देख उन्होंने बड़े तपाक से उठकर उनसे हाथ मिलाया कुर्सियाँ मँगाईं। बैठने पर टर्रे महाशय ने मुस्किराकर कहा मैंने खुद ही आना मुनासिब समझा!"

दारोगाजी मिलनसार थे। बोले—"बड़ी मिहरबानी की इसके बाद उन्होंने एक सिपाही को पान लाने का हुक्म दिया कुछ देर दोनों पार्टियाँ चुप रहीं।

पानखाने के बाद दारोगाजी ने कहा—"कहिए, मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूँ।"

"हमें बहुत खुशी है कि आप इतने खुशअखलाक हैं! आखिर तो हमारे भाई ही हैं। आप अपनी ड्यूटी पूरे तौर पर अदा करते हैं, इसका हमें जरा भी मलाल नहीं।"

दारोगाजी ने चिन्ता का भाव मुख पर लाकर कहा—"हमें आप साहबान के भाई कहलाने की इज्जत तो नहीं मिल सकती, अलबत्ता आप हमें खिदमतगार कह सकते हैं। अमन अमान कायम रखने के लिए हमारी उतनी ही जरूरत आपको है जितनी सरकार को।"

"बेशक, बेशक!" दो तीन लीडरान बोल उठे—"आप

ख़ुशी से अपनी ड्यूटी कीजिए।"

बात आगे बढ़ती जा रही थी। पुलिस थाना चौपाल बन रहा था। बेचारे दारोगाजी कुछ मतलब नहीं समझ रहे थे। बाहर भीड़ ने आफ़त मचा रक्खी थी। सिपाही कई बार भीड़ को हटाने की इजाज़त माँग चुके थे। परंतु दारोगाजी इस इंतज़ारी में थे कि ये लोग कुछ कहें, तो इनके यहाँ आने का कारण मालूम हो।

आखिर उन्होंने कहा—"आप लोगों के लिये शर्बत मँगाया जाय ?"

"जी नहीं, आपकी मिहरबानी है।"

"तो फ़र्माइए, क्या हुक्म है ?"

"हुक्म की इंतज़ारी तो हम लोगों को है।"

"मैं तो कह चुका कि मैं आपका और सरकार का ख़ादिम हूँ।"

"तो इसमें हमें कुछ शिकायत थोड़े ही है।"

"यह आपकी मिहरबानी है।"

थोड़ी देर फिर सन्नाटा रहा।

अंत में एक सज्जन ने खड़े होकर कहा—

"दारोग़ा जी, कब तक आप यह शराफ़त का लिहाज़ रक्खेंगे। अब डिक्टेटर साहब हाज़िर हैं। इन्हें गिरफ़्तार

करके जाब्ते की कार्यवाही कर डालिए।"

दारोग़ाजी ने थोड़ा लाचारी का भाव बताकर कहा—"मुझे बहुत अफ़सोस है कि जब तक ऊपर से हुक्म न हो, मैं किसी को गिरफ़्तार नहीं कर सकता।"

"तब बिना हुक्म आपने फ़ोन क्यों किया?"

"कैसा फ़ोन?"

"कि इनका वारंट है। थाने में आकर गिरफ्तार हो जायँ।"

"मैंने फ़ोन नहीं किया?"

"आपने फोन नहीं किया?

"नहीं।"

"मेरा वारंट नहीं है?"

"नहीं।"

"दर्याफ़्त कीजिए, किसी दूसरे सेंटर से किया गया होगा।"

"आप तो मेरे ही हल्के में हैं। यह ना-मुमकिन है।"

"तब फ़ोन किसने किया?"

दारोग़ाजी मुस्किराकर बोल उठे—"किसी मसख़रे का काम मालूम होता है।" इसके बाद वह जोर से हँस पड़े।

डिक्टेटर साहब अपने साथियों-सहित बड़े लज्जित हुए। उन्होंने अपनी फूल-मालाओं पर दृष्टि डालते हुए कहा—"उस बदमाश का पता लगाना चाहिए।"

"अजी, इसे तो इनाम दीजिए। इसी की बदौलत..." दारोगाजी आगे की बात पी गए।

"तब मैं जा सकता हूँ ?" डिक्टेटर साहब ने पूछा।

"मैं कैसे कहूँ ?"

पार्टी उठकर चल दी। डिक्टेटर और पार्टी को ज्यों-का त्यों बैरंग वापस आते देख भीड़ ने फिर गगनभेदी इन्कलाब का नारा बुलंद किया। सजी मोटर में फिर आप बैठाए गए। सत्य बात को प्रकट करने की ज़रूरत नहीं समझी गई। जुलूस उसी शान से लौटा।

लोग कह रहे थे—"आदमी नहीं, शेर है। इस पर हाथ डालने की सरकार जुर्रत ही नहीं कर सकती।"

—:o:—

भाभी ★

ऊषा के उदय होने के प्रथम ही तुम फिर सो गई ? एक बार जाग कर और उन्हें अपने काम पर जाने की अनुमति देकर। विदेश में, सागर की अनन्त लहरों के उस पार निश्चिन्त होकर सोने का तुमने खूब सुअवसर पाया ! जहाँ तुम्हारी उस सुखद नींद में विघ्न करने वाला—गुदगुदा कर जगाने वाला कोई भी अपना सगा नहीं है । ससागरा पृथ्वी तो वृद्धिगत प्रभात के आलोक में हास्य बखेर रही है और तुम कुलवधू होकर अब तक सोती हो ? भाभी, उठो, वे जा रहे हैं, तुम्हारे पति, जीवन सहचर, जिन्हें तुम अनुमति दे चुकी हो, वे चले जायंगे। तुम सोती ही रहोगी ? यह निर्मम विदा तो बड़ी अनोखी रही, तुम्हारे मृदुल स्वभाव से सर्वथा विपरीत और अनहोनी।

तुम्हारा यह अस्वाभाविक सोना हमारे हृदयों में आशंका भर रहा है, यह कैसा सोना है, अशुभ और अनपेक्षित।

★ कमला नेहरू के स्वर्गवास की सूचना पाकर लेखक की लेखनी ने ये आँसू बहाए थे।

अब तुम उठो,—उठो ओ-भारत की कुलवधू

पक्षी जाग गये ,वे सोहनी गारहे हैं। चमेली की कलियाँ खिल गईं, गायें अपने बच्चों को दूध पिला रही हैं, मातायें स्नेह बखेर रही हैं, देखो, यह संसार कितना सुन्दर हो रहा है, एक बार आँखें खोल कर देखो, हम चिन्तित हो कर तुम्हारी ही ओर देख रहे हैं।

अरे, यह कैसी चिर निद्रा है? समुद्र उद्विग्न होरहा, है उसके इस पार से उसपार तक दीर्घनिश्वासों की छाया डोल रही है, मानवकुल अकुला उठा—तुम उठती नहीं, क्या तुम कभी न उठोगी? कभी नहीं, ? उस वेदनामय आनन्द के जीवन में एक बार भी नहीं? क्यों? ऐसी क्या नाराजी की बात हुई भाभी, कमला! किससे तुम रूठ गईं? हमसे? जिन्हों ने तुम्हें सदैव कारागर में रहने दिया—तुम वहाँ बन्दिनी रहीं और हम हँसते रहे—खाते पीते और जीते रहे। या अपने पति पर, जो तुम्हारी रुग्ण शैया की पाटी पर न बैठ मां के ध्यान में मग्न रहा—उस अनन्त शस्य श्यामला मां के ध्यान में—जो जगत के पद-धूल में लोटी पड़ी थी।

नहीं, तुम रूठने न पाओगी, तुम्हें जगना होगा। जैसे पीठ दिखा कर गईं थीं, वैसे ही आकर मुँह दिखाना होगा, हम करोड़ों तुम्हारे परिजन एक बार तुम्हें वेदना की कँटकमयी-शैया पर हँसते हुये सोते देख, साहस का बीज। मन में

उदय किया चाहते हैं। तुम्हारे उस अनिन्द्य कुलवधू के चरित्र को—जो हम भारतीयों का आधार है अपना आदर्श बनाना चाहते हैं। उठो भाभी, सामने खड़ी होकर उसीभाँति हंसती रहो उस हंसी के जादू से हमारी कायरता की कालिमा दूर होती है। हमवीर बनते हैं, हम मर्द बनते हैं।

जैसे धूप से फूल को बचाकर रखा जाता है, उसी भाँति तुम्हें तारों की छाँह और चाँद की परछाईं से बचाकर हाथों ही हाथों वे देशबिदेश में लिए फिरे ? सो क्या इसीलिये कि तुम एक दिन अनायास ही इस भाँति सो जाओगी, और फिर करोड़ों करुण क्रन्दन भी तुम्हें जगा न सकेंगे।

अरे देखो लोगों, यह अप्रतिम जोड़ी बिछुड़ती हैं। दोनों ही एक साथ बढ़े, पीड़ा के कुण्ड में बढ़ २ अग्निस्नान करते रहें, एक से एक बढ़कर उद्ग्रीव हो कर: अब-एक तो जा रहा है उस पार और एक आ रहा है इस पार !!

अरे ओ तप और त्याग के देवताओं, तुम यह कैसा रहस्यमय खेल खेल रहे हो ? जिसे देखकर मनुष्य का हृदय हाहाकार करता है, परन्तु तुम्हारी मन्द मुस्कान इस आने और जाने में भी होठों की कोर पर वैसी ही अठखेलियाँ कर रहा है।

—:०:—

जवाहर *

तप और त्याग के देवता की भाँति, तुम विश्व की दलित जातियों का प्रतिनिधित्त्व करते हुए न आँधी देखते हो न मेह ? आगे बढ़ते ही जाते हो ?

जीवन के इस पार का सब कुछ तुम त्याग चुके हो और उस पार तुम्हारी सहधर्मिणी की वेदनाएँ बिखरी हुई हैं। इस पार से उस पार तक हम केवल तुम्हीं को देख रहे हैं।

ओ! भारत के यौवनधन! ओ! देश के उद्ग्रीव ब्राह्मण! आज देश के प्राण सिमट कर तुझमें प्रविष्ट हो रहे हैं। तेरी परचिन्ता से विकल, अस्थिर, चल मूर्ति को देख कर हमारे हृदय में आशा और उत्साह की लहर पैदा होती है।

तुमने हम सबसे अधिक विश्वदर्शन किया है। तुमने हम

---

* ये फूल श्री जवाहरलाल पर उस समय बखेरे गये थे जब विदेश में उनकी पत्नी मृत्यु शैयापर सिसक रही थी और श्री जवाहरलाल जेल के सीखचों में छटपटा रहे थे।

सबसे अधिक आत्मदर्शन किया है। और तुमने ही हम सब से अधिक भविष्य दर्शन किया है। अरे! ओ! दिव्यदर्शी! ठहर, हम ज़रा तेरे दर्शन कर लें। उस दर्शन में विश्व दर्शन आत्म दर्शन, भविष्य दर्शन सब कुछ हो जायगा।

उन्होंने वेदना की कण्टकमयी शैया तुम्हारे लिये लोह पुष्पों से सजा रक्खी है, और हम सब उसके रखवाले हैं। तुम सोओ उस पर, व्यथित हृदय लेकर और हम देखें तुम्हें शून्य हृदय होकर !!! हायरे हम !!!



आशा के तार

आशा प्यारी ! रात चाहे जैसी अन्धेरी हो। और चाहे जैसा आँधी और तूफान उमड़ रहा हो। चाहे प्रलय के बादल गर्ज रहे हों और उस भयानक जँगल में चाहे जितने शेर, चीते, सर्प, नद, नाले और ऊबड़ खाबड़ पर्वत हों, मार्ग चाहे न दीखता हो, पर तेरे उसी तार के सहारे-हृदय को आनन्दित कर देने वाली ध्वनि में, उसी तार की तुन तुनी बजाता हुआ, मस्त वायु में झूमता हुआ—अचल भाव से चले ही जाऊँगा स्त्री, पुत्र, धन, और यश चाहे मेरा साथ छोड़ दें। दुनिया चाहे मुझे अभागा कहे—अविश्वासी कहे। पर हे उज्ज्वल आलोक की देवी ! हे साहस और धीरज की अधिष्ठात्री ! हे मन की रानी ! आशा ! आशा ! तू मुझे मत छोड़। बिजली की तरह हृदय में चमकती रह। अन्धे भिखारी के इकतारे की तरह एक स्वर, एक ताल में बजती रह मैं भूखा, प्यासा, थका, जख्मी, रोगी अपाहिज और दुखिया हूँ। पर तेरे इकतारे की तुनतुनी की तान पर अवश्य नाचूँगा। दिखा अपना तार ! ओफ् ! मिल गये आशा के तार !!!

जाओ ★

जाओ !

उन मनहूस दिवारों की एक बाँकी झाँकी करने।
इस्पाती पिंजरे में कुछ दिन बद्ध बसेरा बसने।
तपा अग्नि में इस कुन्दन को खरी कसौटी कसने।
परहित पीड़ित होकर दुर्लभ आत्म तुष्टि रस चखने।
जाओ ए रणबंके छैला! खूब अकड़ कर जाओ।

जाओ–

रण रसिया पर रण उमंगको ज़रा रोक कर रखना।
घड़ी अनी की आवे तब तक मन में धीरज धरना।
साहस कभी न खोना उस अवसर की आशा करना।
व्यर्थ पतंग समान न जलना मर्द कहा कर मरना।
जीते मरे जभी आओ तब हमको हंसते पाओ।

जाओ–

मन में मैल न लाना दुख में कायर रुदन न रोना।
मोती के दर मिली वस्तु पानी के भाव न खोना।

★ श्री गणेश शंकर विद्यार्थी की जेल यात्रा पर।

हृदय कमल जब मुर्झावे तब भक्ति भाव में रोना।
पाप वासना दुश्चिन्ता सब नयन नीर में धोना।
जब आओ तब उससे पहिले पाप गढ़ी को ढाओ।
जाओ-

दुर्बल तन में अचल आत्म बल का अब परिचय देना।
अचल खड़े रहना पर्वत से रौ में तनिक न बहना।
अटल धैर्य से नर्म गर्म सब सबकी सब कुछ सहना।
शान्त अहिन्सा के अभ्यासी शान्त शान से रहना।
जब आओ तब उसी पुरुष की छाँह ओढ़ कर आओ।
जाओ-

खबरदार रहना कोयों में आँसू छलक न आवें।
उन आँखों की रौद्र अग्नि बस तनिक न बुझने पावे।
हिंसक ज्वाला में दुर्लभ तप तेज न जलने पावे।
उस एकान्त वास में यदि कुछ नई भावना आवे।
उन्हें साथ में लाओ जब तुम दुर्ग विजय कर आओ।
जाओ-

व्यग्र न होना, पाप घड़े को ऊपर तक भरवाना।
सदा अधिक दुखदाई है कच्चा फोड़ा चिरवाना।
मनकी आग न बुझने देना नहीं उकसने देना।
रोष अश्व की रास कड़े हाथों से पकड़े रहना।
वज्रपन्थ के पथिक बने हो फिर ऐसे ही आओ।

जाओ—

आर्य रक्त और आर्य वंश का जब उद्दीपन होगा।
इसी अग्नि से अग्नि होत्र का तब आयोजन होगा।
श्वेतदर्प का विश्व व्याप्त आतंक जहाँ जो होगा।
अश्वमेध की आहूती में वह सब स्वाहा होगा।
उस प्रसंग पर अमन्त्रित होकर ही अब तुम आओ।

जाओ—

पूज्य पिता के शुभ असीस की सिर पर पाग बंधेगी।
भक्ति सती की नित्य तुम्हारा अक्षय कवच रचेगी।
मित्रों की कामना तुम्हारी रक्षा सैन्य बनेगी।
साठ करोड़ आँख निशि वासर तुम पर सदा रहेंगी।
भय क्या है? हर्षाते जाओ हँसते २ आओ।

जाओ—

वेदी के उत्तुङ्ग शिखर पर से फिर रंग दिखाना।
धारा वाह वाग्वाणों का विकट मेह बर्साना।
मरे मनों को हरे बनाना जीतों को मस्ताना।
सदा गूँजती रहे एक ऐसी आवाज उठाना।
वही आन आने की है जब आओ उसे निबाहो।

जाओ

जाओ

जाओ

आओ !!!

आओ—

हे भारत के अन्तिम योद्धा आओ अब तुम आओ।
तपको त्यागो, कर्म योग के बन्धन में बँध जाओ।
आओ योगी धर्म धुरंधर ? आओ-आओ-आओ।
रहे सहे फन्दों से अब भारत का पिण्ड छुड़ाओ।

आओ—

लाल तिलक की लाली सब बह गई समय के नद में।
रोली रोली जी भरकर अब कहाँ विचारी भटके।
प्राण हमारे बीच मार्ग में पड़े हुऐ हैं अटके।
बना खेल सब विगड़ जायगा, जो तुम थोड़े अटके।

आओ—

ओ भविष्य के महापुरुष, अब आओ आओ आओ।
छकड़ा भरा शान्ति मय आदर साथ लाद कर लाओ।
टूटे हुऐ तार आशा के आकर शीघ्र जुड़ाओ।
बुढि़या मा का महा पुण्य आसीस लूट ले जाओ।

आओ—

जरा ठहर कर आना, पर कुछ आश्वासन तो भजो।
थाती पड़ी अरक्षित है अब इसका जरा सहे जो।
समय चूकने पर उठने का कुछ न प्रतिफल होगा।
प्यासा प्यासा मर जायेगा-फिर आकर क्या होगा।

आओ—

हे भारत के भूषण त्यागी! त्याग त्याग कर आओ।
शान्ति पन्थ को तजो, हमारी पहिले आग बुझाओ।
धर्म करो, सद्धर्म योग–बस यही प्रथम अजमाओ।
हमें मार्ग से उठा गोद में-मंजिल पर पहुँचाओ।

आओ

आर्य रक्त से कालेपन का धब्बा शीघ्र छुड़ादो।
कुलबालाओं का विदेश में कुलीपना छुड़वादो।
मरी हया को रोम २ में से जीवित करवा दो।
जीने मरने के सुन्दर ढंग हमको जरा बता दो।

आओ—

युवक जनों की अक्षय मंगल मूरति बनकर आओ।
शुद्ध दुधारे बच्चों का आरोग्य साथ में लाओ।
पति हीना सतियों को थोड़ी शान्ति संग में लाओ।
चिरताप सन्तप्त बुजुर्गों को आधीर बँधाओ।

आओ—

भोले बच्चों का कुल्टा शिक्षा से पिण्ड छुड़ादो।
अपने मन की खरी २ यह चाल उन्हें बतलादो।
काय वचन मन से हिन्सा की भीषण आग बुझादो।
खुली बुहारी एक सत में कस कर नाथ, बंधा दो।

आओ—

हे दुखिया के जीवन धन ! तत्काल यहाँ पर आओ।
विषम घाव पर ठण्डा मरहम आकर स्वयं लगाओ।
महा मनस्वी ! महा योग का फल हमको दिखलाओ।
मुर्झाई मन की कलिओं को जरा २ विकसाओ।

आओ—

नवजीवन संचार करो तन मन में नूतन बल दो।
रक्षा में रुचि दो, मरने में कुछ थोड़ा साहस दो।
सामाजिकता समझ सकें कुछ ऐसी खरी अकल दो।
कठिन समय में स्वार्थ त्याग करने का भीतर बल दो।

आओ—

कान पकड़ कर विप्रजनों को अब विद्वान बनाओ।
मार २ कर रजपूतों को क्षत्रिय धर्म सिखाओ।
कड़ी मलामत दे वैश्यों को सच्चे वैश्य बनाओ।
हृदय लगा शूद्रों को टूटे हुए हृदय जुड़वाओ।

आओ—

अमी जनों के लिये मान सम्मान और सुख लाना।
वीर सिपाही लोगों को लोकोत्तर आदर लाना।
शिल्पकार मण्डलको सब से उत्तम गौरव लाना।
धूल ज़रा सी इन कुरीतियों के दुर्मुख को लाना।

आओ—

अटल छत्र माता को सुन्दर साथ गढ़ा कर लाओ।
सिंहासन के लिये शुभ आसन सिलवाकर लाओ।
रमा भारती को माता की सखी बना कर लाओ।
जो कुछ लाओ देख भाल कर शुद्ध स्वदेशी लाओ।

आओ—

सब कुछ लाना किन्तु युद्ध विग्रह कुछ भी मत लाना।
रक्त पात से शान्ति और सुख को मत रंग रंगाना।
शुद्ध क्षमा को यश का धौला उपाधान पहनाना।
सहन शीलता से खस के दो पंखे लेते आना।

आओ—

दिव्यदिशा के महापुरुष, अब आओ-आओ-आओ-
यतन करो कुछ अपना, हमको ऊपरजरा उठाओ।
पुण्यकरो पुण्यार्थ मनस्वी! थोड़ा कष्ट उठाओ।
हमें बचाओ, खुद सुख पाओ, माता को हर्षाओ।

आओ—

न्याय मूर्ति रानाडे ने तो न्याय न्याय विलगाया।
नीति न्याय सम्बन्ध गोखले नेपीछे प्रकटाया।
न्यायधर्म पर निर्भर हो यह पूज्य तिलक ने गाया।
धर्म न्याय का सह संचालन गांधी ने प्रकटाया।

आओ

अर्थवाद पर आत्मवाद को अन्तिम विजय दिलाओ।
धर्म नीति से राज नीति का पक्का व्याह कराओ।
मनुकुल का यह लौकिक जीवन धर्म प्रधान बनाओ।
इस कलियुग में भारत का उत्कट उत्कर्ष दिखाओ।

आओ—

छली स्वार्थ से विनय बालिका का अब पिण्ड छुड़ादो।
प्रेम मार्ग से विषय वासना का दुर्मेल हटादो।
शुभ्र चतुरता की सच्चाई पर से भीति भगादो।
अविश्वास का मैत्री से बस सब सम्बन्ध छुटादो।

आओ—

कभी न हों अवसान हमारे जीवन का मरने से।
मृत्यु पुरानी काया हर कर नूतन सुन्दर तन से।
कार्य हमारे कभी न हों अब रुद्ध मृत्यु की हद से।
अमर रहें, हम निर्भय जीवन पावें विजयी पद से।

आओ—

नये दिवस के नव प्रभात की नई घड़ी जो आये।
आशा सुख सम्मान शान्ति साम्राज्य साथ में लाये।
सुखी रहे तन शान्त रहे मन, तृप्ति आत्मा पावे।
त्रदल बसे घर में घट रित अमर आयु हम पावें।

आओ,

हे भारत के ज्येष्ठ पुत्र ! अब तनिक न देर लगाओ।
पुण्य पर्व में वृद्धा माता को तुम मत तरसाओ।
हमें चरण रज दो माता का चरणोंदक ले जाओ।
तिलकहीन माके मस्तक पर स्वयं तिलक बन जाओ।

आओ !

आओ !!

आओ !!!